आज़ादी का अमृत महोत्सव

मई, 2022
I.S.S.N. : 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त

संपादक

श्री अविनाश शुक्ला
श्री असलम खान

सहायक संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक

श्री महीपाल सिंह
श्री जसवन्त सिंह
श्री जाहन्वी शेखर शर्मा
श्री अमर्त्य हेम विप्र पाण्डेय

ISSN-2457-0494

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 195/-

वार्षिक : ₹ 2,100/-

© 2022 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

मई, 2022 अंक - 5

प्रधान संपादक
कमला कान्त

संपादक
अविनाश शुक्ला

विधि साहित्य
प्रकाशन

[2022] 2 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website ⟹ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, विधि छात्रों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

इस अंक के माध्यम से आपके अवलोकनार्थ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **स्वदेश कुमार अग्रवाल** बनाम **दिनेश कुमार अग्रवाल और अन्य** [2022] 2 उम. नि. प. 212 वाले महत्वपूर्ण मामले में तारीख 5 मई, 2022 को पारित निर्णय प्रस्तुत कर रहे हैं यह मामला 1996 की माध्यस्थम और सुलह अधिनियम की धारा 11(6), 14(1)(क) और 14(2) के अधीन मध्यस्थ की नियुक्ति आदेश की समाप्ति और मध्यस्थ के प्रतिस्थान से संबंधित है । इस मामले में दोनों पक्षों ने पारस्परिक सहमति से कुटुम्बिक संपत्ति के विवाद के निस्तारण के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष एकल मध्यस्थ की नियुक्ति पर सहमति व्यक्त की थी । तत्पश्चात् एक पक्ष (प्रत्यर्थी) ने मध्यस्थ द्वारा माध्यस्थम कार्यवाहियों के समापन में विलंब के आधार पर मध्यस्थता की समाप्ति के लिए जिला न्यायालय के समक्ष धारा 14(1)(क) के अधीन आवेदन प्रस्तुत किया । दूसरे पक्ष (अपीलार्थी) ने इस प्रार्थनापत्र का विरोध किया और प्रार्थनापत्र को खारिज किए जाने के प्रयोजनार्थ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन फाइल किया । विचारण न्यायालय द्वारा आदेश 7 नियम 11 के अधीन फाइल किए गए प्रार्थनापत्र को खारिज कर दिया गया । अपीलार्थी ने इस आदेश से व्यथित होकर माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की । इसी बीच प्रत्यर्थी ने भी धारा 14(1)(क) के अधीन मध्यस्थ की नियुक्ति आदेश को समाप्त किए जाने और अन्य मध्यस्थ नियुक्त किए

जाने के प्रयोजनार्थ धारा 11(6) के अधीन आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने धारा 11(6) के अधीन फाइल किए गए आवेदन को मंजूर कर लिया और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई रिट याचिका को खारिज कर दिया । इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायलय के समक्ष रिट याचिका फाइल की । माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका को यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया कि जहां माध्यस्थम कार्यवाहियों का कोई पक्ष धारा 14(1)(क) में उल्लिखित कारणों के आधार पर मध्यस्थ की नियुक्ति को समाप्त किए जाने की ईप्सा करता है, तो ऐसे मामले में उसके द्वारा न्यायालय के समक्ष ऐसा आवेदन धारा 14(2) के अधीन फाइल किया जाएगा और मध्यस्थ की नियुक्ति आदेश को समाप्त किए जाने से संबंधित विवाद का विनिश्चय धारा 11(6) के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर नहीं किया जा सकता और ऐसा आवेदन संधार्य नहीं होगा । साथ ही माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारा 11(5) और धारा 11(6) के मध्य अंतर और विभेद को स्पष्ट करते हुए यह भी अभिनिर्धारित किया कि ऐसे मामलों जिनमें पक्षकारों के मध्य मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया के संबंध में कोई लिखित करार नहीं है, तो विवाद उत्पन्न होने की दशा में मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए धारा 11(5) के अधीन आवेदन संधार्य होगा और ऐसे मामलों जिनमें पक्षकारों के मध्य मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में माध्यस्थम करार विद्यमान है, तो मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में विवाद की दशा में धारा 11(6) के अधीन आवेदन संधार्य होगा ।

इस अंक में केंद्रीय अधिनियम न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

मई, 2022

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
ए. जी. पेरारीवलन **बनाम** राज्य मार्फत पुलिस अधीक्षक, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो/एसआईटी/एमडीएमए, चेन्नई, तमिलनाडु और एक अन्य	251
चंद्रपाल **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य (पूर्वतर में मध्य प्रदेश)	294
बिद्याधर प्रहराज **बनाम** उड़ीसा राज्य (देखिए - पृष्ठ सं. 278)	
भारत संघ और अन्य **बनाम** आशीष अग्रवाल	180
राजस्थान राज्य **बनाम** बनवारी लाल और एक अन्य	159
स्वदेश कुमार अग्रवाल **बनाम** दिनेश कुमार अग्रवाल और अन्य	212
साबित्री सामंत्रे **बनाम** उड़ीसा राज्य	278

संसद् के अधिनियम

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 - 10

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43)

– धारा 147 से 151 (वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथा संशोधित) – पुनर्निर्धारण – संशोधन तारीख 1 अप्रैल, 2021 से प्रवृत्त होने के बावजूद आय-कर विभाग द्वारा निर्धारण से छूट प्राप्त आय के लिए निर्धारितियों को असंशोधित धारा 148 के अधीन कारण बताओ सूचना जारी किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा इन्हें नए उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए विधि की दृष्टि से दूषित होने के आधार पर अभिखंडित किया जाना – अपील – संधार्यता – यद्यपि वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित नई धारा 148क के अधीन विहित प्रक्रिया का पालन किए बिना धारा 148 के अधीन कोई सूचना जारी नहीं की जा सकती है, तो भी इस बात को दृष्टिगत करते हुए कि नए उपबंध कर प्रशासन का सरलीकरण करने, अनुपालन को आसान बनाने और मुकदमेबाजी को कम करने के विनिर्दिष्ट लक्ष्य और उद्देश्य तथा निर्धारितियों के अधिकारों और हितों की संरक्षा करने के साथ-साथ लोक हित में प्रतिस्थापित किए गए हैं और चूंकि पुनर्निर्धारण सूचनाओं को अभिखंडित करने से सरकारी खजाने को हानि होगी, अत: असंशोधित धारा 148 के अधीन जारी की गई सूचनाओं को प्रतिस्थापित धारा 148क के अधीन जारी किया गया समझा जाना उचित होगा ।

भारत संघ और अन्य बनाम **आशीष अग्रवाल** 180

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 432(7) [सपठित भारत का संविधान, 1950

पृष्ठ संख्या

का अनुच्छेद 72, 73 और 161] – दंडादेशों का निलंबन या परिहार करने की शक्ति – समुचित सरकार – भारत के पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या के सिद्धदोष अभियुक्त के दंडादेश के परिहार के लिए राज्य मंत्रिमंडल द्वारा प्रस्ताव पारित करके राज्यपाल को भेजा जाना – राज्यपाल द्वारा उक्त प्रस्ताव पर कोई विनिश्चय किए बिना मामले को राष्ट्रपति के पास प्रेषित किया जाना – राज्य मंत्रिमंडल की सिफारिश को राष्ट्रपति को निर्देशित करने की राज्यपाल की शक्ति – चूंकि भारत के संविधान में सन्निविष्ट कैबिनेट शासन प्रणाली में राज्यपाल राज्य का सांविधानिक या औपचारिक मुखिया होता है और वह संविधान द्वारा उसे प्रदत्त सभी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग मंत्रिमंडल की सहायता और सलाह से करने के लिए आबद्ध है, इसलिए राज्यपाल द्वारा अनुच्छेद 161 के अधीन अपनी शक्तियों या कृत्यों का प्रयोग न करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है और इसके अतिरिक्त दंडादेश की माफी के लिए अर्जी में विनिश्चय करने में अत्यधिक विलंब होने, अपीलार्थी द्वारा 32 वर्ष का कारावास भुगत लेने, जेल में उसके आचरण से संबंधित कोई शिकायत न होने, पैराल पर छोड़े जाने के दौरान उसका आचरण संतोषजनक पाए जाने, चिकित्सा रिपोर्ट के अनुसार उसका स्वास्थ्य ठीक न होने की बात को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए उसे रिहा करना उचित होगा ।

ए. जी. पेरारीवलन बनाम **राज्य मार्फत पुलिस अधीक्षक, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो/एसआईटी/ एमडीएमए, चेन्नई, तमिलनाडु और अन्य** 251

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302, 201 और 304(II) [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106] – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – अभियुक्तों की पुत्री और मृतक के बीच प्रेम संबंध होना – मृतक द्वारा अभियुक्तों के मकान पर जाने पर उनके द्वारा गला घोंटकर उसकी हत्या किया जाना और उसके शरीर पर तेजाब छिड़ककर शनाख्त छिपाने का प्रयत्न किया जाना – दोषसिद्धि – आजीवन कारावास का दंडादेश दिया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को कायम रखा जाना और इसे धारा 304 भाग 2 में उपांतरित किया जाना – दोषसिद्धि के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील – जहां सभी साक्षियों द्वारा किए गए कथनों, सुसंगत स्थान और समय पर मृतक को पहुंची घातक क्षतियों, अभियुक्तों के अपराध कारित करने के आशय को सफलतापूर्वक सिद्ध किया गया हो और अभियुक्त अपने इस भार का निर्वहन करने में असफल रहे हों कि उनके मकान में मृतक की मृत्यु कैसे हुई थी, वहां घटनाओं की संपूर्ण श्रृंखला से केवल अभियुक्तों की दोषिता इंगित होने पर उनकी दोषसिद्धि उचित है और उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

साबित्री सामंत्रे बनाम **उड़ीसा राज्य** 278

– धारा 302 और 201/34 – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – अभियुक्त-अपीलार्थी की बहिन और एक लड़के के बीच प्रेम संबंध होना – अभियुक्त और सह-अभियुक्तों के विरुद्ध दोनों की हत्या करने और फिर शवों को आत्महत्या दर्शित करने के लिए एक पेड़ से लटकाए जाने का अभिकथन किया जाना – मरणोत्तर

पृष्ठ संख्या

परीक्षा रिपोर्ट में मृतकों की मृत्यु आत्महत्या से होने की संभावना व्यक्त किया जाना – अभियुक्त-अपीलार्थी को अंतिम बार मृतक के साथ देखे जाने का अभिकथन किया जाना – अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को कायम रखा जाना और सह-अभियुक्तों की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त करते हुए धारा 201/34 के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि किया जाना और पहले ही भुगत ली गई अवधि तक दंडादिष्ट किया जाना – अभियुक्त द्वारा दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील – जहां अभियोजन पक्ष का साक्ष्य मृतक की मानव वध मृत्यु के सबूत के लिए कम पड़ता है और यदि आत्महत्या से मृत्यु की संभाव्यता को नकारा न जा सकता हो, वहां अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोप युक्तियुक्त संदेह के परे साबित न होने के कारण उसे मात्र अंतिम बार मृतक के साथ देखे जाने की कहानी के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है और उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

चंद्रपाल बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य (पूर्वतर में मध्य प्रदेश)** 294

– धारा 302 और 201/34 – हत्या – अभियुक्त-अपीलार्थी की बहिन और एक लड़के के बीच प्रेम संबंध होना – अभियुक्त और सह-अभियुक्तों के विरुद्ध दोनों की हत्या करने और फिर शवों को आत्महत्या दर्शित करने के लिए एक पेड़ से लटकाए जाने का अभिकथन किया जाना – सह-अभियुक्त द्वारा अपराध की न्यायिकेतर संस्वीकृति किया जाना – दोषसिद्धि – साक्ष्यिक महत्व – चूंकि न्यायिकेतर संस्वीकृति एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य होता है और जब तक इससे विश्वास प्रेरित न

पृष्ठ संख्या

होता हो या किसी अन्य सटीक साक्ष्य द्वारा इसकी संपुष्टि न होती हो और जहां अभियुक्त के विरुद्ध कोई सारभूत साक्ष्य न हो, वहां सह-अभियुक्त द्वारा अभिकथित रूप से की गई अपराध की न्यायिकेतर संस्वीकृति महत्वहीन हो जाती है और ऐसी न्यायिकेतर संस्वीकृति के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जाना उचित नहीं होगा ।

चंद्रपाल बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य (पूर्वतर में मध्य प्रदेश)** 294

– धारा 307 और 324 – हत्या का प्रयत्न – अभियुक्तों द्वारा क्षतिग्रस्त व्यक्ति के सिर पर प्रहार करके गंभीर क्षति कारित किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त (सं. 1) को धारा 307 और अन्य अभियुक्त (सं. 2) को धारा 324 के अधीन दोषसिद्ध किया जाना तथा अभियुक्त सं. 2 को परिवीक्षा का फायदा प्रदान किया जाना – अभियुक्त सं. 1 को तीन वर्ष के कारावास से दंडादिष्ट किया जाना – अभियुक्तों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल किया जाना – अपील में अभियुक्तों द्वारा दोषसिद्धि को चुनौती न देते हुए इस आधार पर पहले ही भुगत ली गई कारावास की अवधि (44 दिन) तक दंडादेश को कम किए जाने का अनुरोध किया जाना कि वे पिछले 26 वर्षों से विचारण का सामना कर रहे हैं और घटना कारित करते समय पर युवा थे और अब वे वृद्ध व्यक्ति हैं – उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को कायम रखा जाना किंतु पहले ही भुगत ली गई कारावास की अवधि (44 दिन) तक दंडादेश को कोई कारण अभिलिखित न करते हुए कम किया जाना – संधार्यता – जहां क्षतिग्रस्त व्यक्ति को उसके सिर पर ऐसी गंभीर क्षति कारित की

पृष्ठ संख्या

गई हो, जो चिकित्सा साक्ष्य के अनुसार मृत्यु कारित करने के लिए प्रकृति के मामूली अनुक्रम में पर्याप्त थी और अभियुक्त को धारा 307 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए आजीवन और/या दस वर्ष तक का कारावास दिया जा सकता था और विचारण न्यायालय द्वारा नरम दृष्टिकोण अपनाते हुए पहले ही तीन वर्ष के कारावास से दंडित किया गया हो, वहां उच्च न्यायालय द्वारा तीन वर्ष के दंडादेश को अभियुक्त द्वारा पहले ही भुगत ली अवधि (केवल 44 दिन) तक कम करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है ।

राजस्थान राज्य बनाम **बनवारी लाल और एक अन्य** 159

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26)

– धारा 11(5) और धारा 11(6) – अंतर और विभेद – जहां पक्षकारों के बीच मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया के संबंध में कोई लिखित करार नहीं किया गया है, वहां विवाद उत्पन्न होने की दशा में मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए धारा 11(5) के अधीन आवेदन संधार्य होगा और जहां पक्षकारों के बीच मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में माध्यस्थम् करार को अंतर्विष्ट करते हुए लिखित में संविदा है, वहां मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में विवाद की दशा में धारा 11(6) के अधीन आवेदन संधार्य होगा ।

स्वदेश कुमार अग्रवाल बनाम **दिनेश कुमार अग्रवाल और अन्य** 212

– धारा 11(6), 14(1)(क) और 14(2) – मध्यस्थ नियुक्ति आदेश की समाप्ति और मध्यस्थ का प्रतिस्थापन – कुटुम्बिक सम्पत्ति विवाद को लेकर पक्षकारों द्वारा

पृष्ठ संख्या

परस्पर सम्मति से एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किया जाना – मध्यस्थ द्वारा माध्यस्थम् कार्यवाहियों के समापन में विलंब करने के आधार पर एक पक्षकार (प्रत्यर्थियों) द्वारा मध्यस्थ आदेश को समाप्त करने के लिए जिला न्यायालय में धारा 14(1)(क) के आधार पर आवेदन फाइल किया जाना – दूसरे पक्षकार (अपीलार्थी) द्वारा उक्त आवेदन को खारिज करने के लिए सिविल प्रकिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन फाइल किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के आवेदन को खारिज किया जाना – अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल करके चुनौती दिया जाना – इसी बीच प्रत्यर्थियों में से एक द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष धारा 14(1)(क) के आधार पर मध्यस्थ नियुक्ति आदेश को समाप्त करने और एक नया मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए धारा 11(6) के अधीन आवेदन फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा धारा 11(6) के अधीन आवेदन को मंजूर किया जाना और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाएं भी खारिज किया जाना – संधार्यता – जहां माध्यस्थम् कार्यवाहियों का कोई पक्षकार धारा 14(1)(क) में वर्णित घटनाओं के आधार पर मध्यस्थ नियुक्ति आदेश को समाप्त करने की ईप्सा करता है, वहां उसके द्वारा न्यायालय में ऐसा आवेदन धारा 14(2) के अधीन फाइल किया जाएगा और ऐसे विवाद का विनिश्चय धारा 11(6) के अधीन फाइल किए आवेदन पर नहीं किया जा सकता है और ऐसा आवेदन संधार्य नहीं होगा ।

स्वदेश कुमार अग्रवाल बनाम **दिनेश कुमार अग्रवाल और अन्य**

[2022] 2 उम. नि. प. 159

राजस्थान राज्य

बनाम

बनवारी लाल और एक अन्य

[2022 की दांडिक अपील सं. 579]

8 अप्रैल, 2022

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 307 और 324 – हत्या का प्रयत्न – अभियुक्तों द्वारा क्षतिग्रस्त व्यक्ति के सिर पर प्रहार करके गंभीर क्षति कारित किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त (सं. 1) को धारा 307 और अन्य अभियुक्त (सं. 2) को धारा 324 के अधीन दोषसिद्ध किया जाना तथा अभियुक्त सं. 2 को परिवीक्षा का फायदा प्रदान किया जाना – अभियुक्त सं. 1 को तीन वर्ष के कारावास से दंडादिष्ट किया जाना – अभियुक्तों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल किया जाना – अपील में अभियुक्तों द्वारा दोषसिद्धि को चुनौती न देते हुए इस आधार पर पहले ही भुगत ली गई कारावास की अवधि (44 दिन) तक दंडादेश को कम किए जाने का अनुरोध किया जाना कि वे पिछले 26 वर्षों से विचारण का सामना कर रहे हैं और घटना कारित करते समय पर युवा थे और अब वे वृद्ध व्यक्ति हैं – उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को कायम रखा जाना किंतु पहले ही भुगत ली गई कारावास की अवधि (44 दिन) तक दंडादेश को कोई कारण अभिलिखित न करते हुए कम किया जाना – संधार्यता – जहां क्षतिग्रस्त व्यक्ति को उसके सिर पर ऐसी गंभीर क्षति कारित की गई हो, जो चिकित्सा साक्ष्य के अनुसार मृत्यु कारित करने के लिए प्रकृति के मामूली अनुक्रम में पर्याप्त थी और अभियुक्त को धारा 307 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए आजीवन और/या दस वर्ष तक का कारावास

दिया जा सकता था और विचारण न्यायालय द्वारा नरम दृष्टिकोण अपनाते हुए पहले ही तीन वर्ष के कारावास से दंडित किया गया हो, वहां उच्च न्यायालय द्वारा तीन वर्ष के दंडादेश को अभियुक्त द्वारा पहले ही भुगत ली अवधि (केवल 44 दिन) तक कम करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है ।

इस अपील के तथ्यों के अनुसार, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थियों और अन्य का भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 447 और 323 और जहां तक अभियुक्त बनवारी लाल-प्रत्यर्थी सं. 1 का संबंध है, उसका भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन भी विचारण किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 1 बनवारी लाल का भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए विचारण क्षतिग्रस्त-फूल चंद की खोपड़ी/सिर के मध्य भाग पर गंभीर क्षतियां कारित करने के लिए किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष ने युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित किया है कि क्षतिग्रस्त फूल चंद को कारित की गई क्षतियां, जो अभियुक्त-बनवारी लाल द्वारा कारित की गई थीं, प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । विद्वान् विचारण न्यायालय ने ऐसा मत व्यक्त करते हुए प्रत्यर्थी-बनवारी लाल को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उसे तीन वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । तथापि, जहां तक अभियुक्त मोहन लाल का संबंध है, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यद्यपि उसे दोषसिद्ध किया था किंतु उसे परिवीक्षा का फायदा प्रदान किया था । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर प्रत्यर्थियों-अभियुक्त बनवारी लाल और मोहन लाल, दोनों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त-बनवारी लाल की ओर से मुख्य दलीलें दी गई थीं, जिनमें प्रत्यर्थियों ने अपनी दोषसिद्धि को चुनौती नहीं दी थी किंतु जहां तक अभियुक्त बनवारी लाल का संबंध है, उसके दंडादेश को इन आधारों पर कम करने का अनुरोध किया गया था कि घटना तारीख 31 मार्च, 1989 को अर्थात् लगभग 26 वर्ष पूर्व घटी थी ; यह कि वे

विगत 26 वर्षों से विचारण का सामना कर रहे हैं और जब घटना घटी थी, तब वे युवा थे और अब वे बूढ़े/वृद्ध व्यक्ति हैं । अभियुक्त बनवारी लाल की ओर से यह भी निवेदन किया गया था कि चूंकि अभियुक्त मोहन लाल को परिवीक्षा का फायदा दिया गया था, इसलिए उसे भी परिवीक्षा का फायदा दिया जाए । उसके पश्चात्, उच्च न्यायालय ने किसी प्रकार के कोई कारण दिए बिना और अपराध की प्रकृति या घोरता तथा अभियुक्त बनवारी लाल द्वारा क्षतिग्रस्त फूल चंद को कारित की गई गंभीर क्षतियों पर विचार किए बिना उक्त अपील को भागत: मंजूर किया और दोषसिद्धि को कायम रखते हुए दंडादेश को उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि (44 दिन) तक कम कर दिया । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त मोहन लाल की अपील को खारिज कर दिया । उच्च न्यायालय द्वारा, जहां तक अभियुक्त बनवारी लाल का संबंध है, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंडादेश में हस्तक्षेप करने और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित तीन वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को पहले ही भुगत ली गई अवधि (44 दिन) तक इसे कम करते हुए तथा जहां तक अभियुक्त मोहन लाल का संबंध है, परिवीक्षा के आदेश की पुष्टि करते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर राज्य द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा भागत: अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह साबित किया गया है कि विपदग्रस्त फूल चंद को शरीर के मार्मिक भाग अर्थात् सिर पर एक गंभीर क्षति पहुंची थी और खोपड़ी का अस्थिभंग हो गया था । डाक्टर ने यह भी राय व्यक्त की थी कि क्षति जीवन के लिए खतरनाक थी और क्षतिग्रस्त फूल चंद को पहुंची क्षति प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी । भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अनुसार, जो कोई किसी कार्य को ऐसे आशय या ज्ञान से और ऐसी परिस्थितियों में करेगा कि यदि वह उस कार्य द्वारा मृत्यु कारित कर देता तो वह हत्या का दोषी होता, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा, और यदि ऐसे कार्य द्वारा किसी व्यक्ति को उपहति कारित हो

जाए, तो वह अपराधी या तो आजीवन कारावास से या ऐसे दंड से दंडनीय होगा, जैसा भारतीय दंड संहिता की धारा 307 में वर्णित है । अत: प्रस्तुत मामले में, अभियुक्तों को आजीवन कारावास और/या कम से कम दस वर्ष तक का कारावास भुगतने का दंडादेश दिया जा सकता था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियुक्त बनवारी लाल को तीन वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया था । अत: विद्वान् विचारण न्यायालय ने केवल तीन वर्ष का कठोर कारावास अधिरोपित करते हुए पहले ही एक उदार दृष्टिकोण अपनाया था । इसलिए उच्च न्यायालय को उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था । यद्यपि उच्च न्यायालय ने किसी बात का उल्लेख नहीं किया है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय जिस बात से प्रभावित हुआ था, वह अभियुक्तों की ओर से दी गई यह दलील है कि घटना तारीख 31 मार्च, 1989 को अर्थात् 26 वर्ष पूर्व घटी थी ; यह कि वे विगत 26 वर्षों से विचारण का सामना कर रहे हैं ; और जब घटना घटी थी, वे युवा थे और अब वे वृद्ध व्यक्ति हैं । पूर्वोक्त बातें एक समुचित और/या पर्याप्त दंडादेश अधिनिर्णीत करते समय एकमात्र विचारणा नहीं हो सकती हैं । यहां तक कि अभियुक्तों की ओर से दी गई यह दलील कि भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन कोई न्यूनतम दंडादेश नहीं है और दंडादेश दस वर्ष तक हो सकेगा, इस दलील का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया जाता है कि विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसम्मत रूप से किया जाना चाहिए और दंडादेश आनुपातिक रूप से तथा कारित किए गए अपराध की प्रकृति और गंभीरता को देखते हुए तथा दंडादेश अधिरोपित करने के लिए इसमें ऊपर निर्दिष्ट सिद्धांतों पर विचार करते हुए अधिरोपित किया जाना चाहिए । केवल यह कारण कि अपील को विनिश्चित किए जाने के समय तक एक लंबी अवधि बीत गई है, ऐसा दंड अधिनिर्णीत करने का आधार नहीं हो सकता है, जो अननुपातिक और अपर्याप्त है । उच्च न्यायालय ने उन सुसंगत कारकों पर कतई विचार नहीं किया है जिन पर समुचित/उपयुक्त दंड/दंडादेश अधिरोपित करते समय किया जाना आवश्यक है । उच्च न्यायालय ने अपील पर अत्यधिक लापरवाह रीति में विचार किया था और निपटारा किया था । उच्च न्यायालय ने अपील का

निपटारा संक्षिप्त रास्ता अपनाकर किया था । जिस रीति में उच्च न्यायालय ने अपील पर विचार किया था और निपटारा किया था, वह अत्यंत निंदनीय है । इस न्यायालय के सामने विभिन्न उच्च न्यायालयों के अनेक निर्णय आए हैं और यह पाया गया है कि बहुत से मामलों में दांडिक अपीलों का निपटारा एक सरसरी रीति में और काट-छांट की पद्धति अपनाकर किया जाता है । कुछ मामलों में, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धियों को कोई पर्याप्त कारण दिए बिना और अभियुक्त की ओर से दी गई इन दलीलों को मात्र अभिलिखित करके कि उनकी दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 या धारा 304 भाग 2 में परिवर्तित किया जा सकता है, भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 या धारा 304 भाग 2 में संपरिवर्तित कर दिया जाता है । वर्तमान मामले जैसे मामलों में अभियुक्तों ने दोषसिद्धि को कोई चुनौती नहीं दी थी और दंडादेश में कमी करने का अनुरोध किया था और इस पर विचार किया गया तथा कोई अतिरिक्त कारण दिए बिना और उन सुसंगत कारकों पर विचार किए बिना, जिन पर समुचित दंड/दंडादेश अधिरोपित करते समय विचार किया जाना आवश्यक है, एक अपर्याप्त और अनुचित दंडादेश अधिरोपित किया गया । यह न्यायालय दांडिक अपीलों का संक्षिप्त रास्ता अपनाकर निपटारा करने की ऐसी परिपाटी की भर्त्सना करता है । अत: उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त बनवारी लाल के संबंध में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित तीन वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को पहले ही भुगत ली गई अवधि (44 दिन) तक कम करते हुए पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश पूर्णत: असंधार्य है और इसे अभिखंडित और अपास्त किया जाना चाहिए । अब जहां तक राज्य द्वारा अभियुक्त मोहन लाल के विरुद्ध फाइल की गई अपील का संबंध है, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यहां तक कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने उक्त अभियुक्त को परिवीक्षा का फायदा प्रदान किया था, जिसके विरुद्ध राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष कोई अपील नहीं की थी और अभियुक्त ने ही अपील फाइल की थी जिसे खारिज कर दिया गया था । अत: राज्य को अभियुक्त मोहन लाल के विरुद्ध वर्तमान अपील फाइल नहीं करनी चाहिए थी जबकि उच्च न्यायालय के समक्ष उसकी अपील

खारिज हो गई थी और दोषसिद्धि की पुष्टि की गई थी । यदि राज्य परिवीक्षा का फायदा प्रदान करने के विरुद्ध व्यथित था, तो उस दशा में, प्रथम बार में राज्य को उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करनी चाहिए थी । (पैरा 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2019]	(2019) 10 एस. सी. सी. 300 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **ऊधम** ;	4.5
[2018]	(2018) 18 एस. सी. सी. 535 : **राजस्थान राज्य** बनाम **मोहन लाल** ;	4.5, 7
[2015]	(2015) 7 एस. सी. सी. 359 : **सतीश कुमार जयंती लाल डाबगर** बनाम **गुजरात राज्य** ।	4.5

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2022 की दांडिक अपील सं. 579.

1993 की दांडिक अपील (एसबी) सं. 36 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर द्वारा तारीख 6 मई, 2015 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री विशाल मेघवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री अभिषेक गुप्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – इजाजत दी गई ।

2. राज्य द्वारा यह अपील 1993 की दांडिक अपील (एसबी) सं. 36 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर द्वारा तारीख 6 मई, 2015 को पारित किए गए उस आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने उक्त अपील को भागत: मंजूर किया और इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 की भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि

को कायम रखते हुए तीन वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को कम करके उसके द्वारा परिरोध में पहले ही भुगती गई अवधि (44 दिन) तक कर दिया गया और जहां तक अभियुक्त मोहन लाल का संबंध है, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन उसे दोषसिद्ध करते हुए और उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के अधीन परिवीक्षा पर छोड़ देने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया ।

3. इस अपील में प्रत्यर्थियों और अन्य का विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 447 और 323 के अधीन और भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन भी (जहां तक अभियुक्त बनवारी लाल प्रत्यर्थी सं. 1 का संबंध है) विचारण किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 1 बनवारी लाल का भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए विचारण क्षतिग्रस्त-फूल चंद की खोपड़ी/सिर के मध्य भाग पर गंभीर क्षतियां कारित करने के लिए किया गया था । क्षतिग्रस्त फूल चंद को खोपड़ी के मध्य भाग पर मस्तिष्क की झिल्ली तक विस्तारित 10 सें. मी. × 1 सें. मी. आकार का हड्डी की गहराई तक विदीर्ण घाव कारित हुआ था और हड्डी बाहर निकल आई थी । उसे अन्य क्षतियां भी पहुंची थीं ।

3.1 विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष ने युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित किया है कि क्षतिग्रस्त फूल चंद को कारित की गई क्षतियां, जो अभियुक्त बनवारी लाल द्वारा कारित की गई थीं, प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । विद्वान् विचारण न्यायालय ने ऐसा मत व्यक्त करते हुए प्रत्यर्थी बनवारी लाल को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उसे तीन वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । तथापि, जहां तक अभियुक्त मोहन लाल का संबंध है, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यद्यपि उसे दोषसिद्ध किया था किंतु उसे परिवीक्षा का फायदा प्रदान किया था ।

3.2 विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर

प्रत्यर्थियों-अभियुक्त बनवारी लाल और मोहन लाल, दोनों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त बनवारी लाल की ओर से मुख्य दलीलें दी गई थीं जिनमें प्रत्यर्थियों ने अपनी दोषसिद्धि को चुनौती नहीं दी थी किंतु जहां तक अभियुक्त बनवारी लाल का संबंध है, उसके दंडादेश को इन आधारों पर कम करने का अनुरोध किया गया था कि घटना तारीख 31 मार्च, 1989 को अर्थात् लगभग 26 वर्ष पूर्व घटी थी ; यह कि वे विगत 26 वर्षों से विचारण का सामना कर रहे हैं और जब घटना घटी थी, तब वे युवा थे और अब वे बूढ़े/वृद्ध व्यक्ति हैं । अभियुक्त बनवारी लाल की ओर से यह भी निवेदन किया गया था कि चूंकि अभियुक्त मोहन लाल को परिवीक्षा का फायदा दिया गया था, इसलिए उसे भी परिवीक्षा का फायदा दिया जाए । उसके पश्चात्, उच्च न्यायालय ने किसी प्रकार के कोई कारण दिए बिना और अपराध की प्रकृति या घोरता तथा अभियुक्त बनवारी लाल द्वारा क्षतिग्रस्त फूल चंद को कारित की गई गंभीर क्षतियों पर विचार किए बिना उक्त अपील को भागत: मंजूर किया और दोषसिद्धि को कायम रखते हुए दंडादेश को उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि (44 दिन) तक कम कर दिया । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त मोहन लाल की अपील को खारिज कर दिया ।

3.3 उच्च न्यायालय द्वारा, जहां तक अभियुक्त बनवारी लाल का संबंध है, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंडादेश में हस्तक्षेप करने और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित तीन वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को पहले ही भुगत ली गई अवधि (44 दिन) तक इसे कम करते हुए तथा जहां तक अभियुक्त मोहन लाल का संबंध है, परिवीक्षा के आदेश की पुष्टि करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर राज्य ने यह अपील फाइल की है ।

3.4 यह अपील फाइल करने में 1880 दिनों का अत्यधिक विलंब हुआ है और इसलिए राज्य द्वारा विलंब को माफ करने का अनुरोध करते हुए एक पृथक् दांडिक प्रकीर्ण आवेदन फाइल किया गया ।

4. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री

विशाल मेघवाल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित तीन वर्ष के कठोर कारावास को पहले ही भुगत ली गई अवधि (44 दिन) तक कम करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश असंधार्य है ।

4.1 जोरदार रूप से यह दलील दी गई कि विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंडादेश को कम करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा कोई विनिर्दिष्ट कारण नहीं दिए गए हैं ।

4.2 यह दलील दी गई कि दंडादेश को कम करते हुए उच्च न्यायालय ने न्यूनकारी और गुरुतरकारी परिस्थितियों को कतई ध्यान में नहीं रखा था और/या विचार नहीं किया था, जो एक समुचित दंड/दंडादेश अधिरोपित करने के प्रयोजनार्थ सुसंगत होती हैं ।

4.3 यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने अपराध की घोरता और विपदग्रस्त/क्षतिग्रस्त फूल चंद को पहुंची गंभीर क्षतियों पर कतई विचार नहीं किया था ।

4.4 यह भी दलील दी गई कि जब विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त (बनवारी लाल) को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए तीन वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग किया गया था, तो उच्च न्यायालय द्वारा उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था, विशिष्ट रूप से जब दोषसिद्धि को चुनौती देते हुए अपील पर जोर नहीं दिया गया था ।

4.5 उपरोक्त दलीलें देते हुए और **राजस्थान राज्य** बनाम **मोहन लाल**[1], **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **ऊधम**[2] और **सतीश कुमार जयंती लाल डाबगर** बनाम **गुजरात राज्य**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लेने के उपरांत इस अपील को मंजूर करने, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को अभिखंडित और

---

[1] (2018) 18 एस. सी. सी. 535.

[2] (2019) 10 एस. सी. सी. 300.

[3] (2015) 7 एस. सी. सी. 359.

अपास्त करने तथा विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय को प्रत्यावर्तित करने का अनुरोध किया गया ।

5. प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री अभिषेक गुप्ता द्वारा इस अपील का जोरदार रूप से विरोध किया गया ।

5.1 अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अभिषेक गुप्ता ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने में 1880 दिनों का अत्यधिक विलंब हुआ है । अभियुक्त अपने-अपने जीवन में पुन:स्थापित हो गए हैं और उनका आचरण तब से संतोषजनक रहा है तथा आक्षेपित निर्णय पारित किए जाने के पश्चात् वे किसी आपराधिक क्रियाकलाप में अंतर्ग्रस्त नहीं रहे हैं और घटना वर्ष 1989 की है, इसलिए कार्यवाहियों को पुनर्जीवित करना अत्यंत कष्टदायक और अन्यायोचित होगा । अत: यह अनुरोध किया गया कि अपील फाइल करने में हुए 1880 दिनों के अत्यधिक विलंब को माफ न किया जाए ।

5.2 गुणागुण के आधार पर, अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने दंडादेश को कम करते समय अभियुक्त बनवारी लाल की ओर से किए गए इन निवेदनों पर विचार किया था कि घटना 26 वर्ष पूर्व घटी थी और अभियुक्त विगत 26 वर्षों से विचारण का सामना कर रहे हैं और जब वर्ष 1989 में घटना घटी थी तब अभियुक्त युवा थे और अब वे वृद्ध व्यक्ति हैं । यह दलील दी गई कि पहले ही भुगत ली गई अवधि (44 दिन) तक दंडादेश को कम करते समय पूर्वोक्त बातों को सुसंगत बातें कहा जा सकता है ।

5.3 अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि जहां तक अभियुक्त मोहन लाल को परिवीक्षा का फायदा प्रदान करने का संबंध है, यह फायदा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा प्रदान किया गया था, जिसके विरुद्ध राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष कोई अपील फाइल नहीं की थी । अत: यह दलील दी गई कि जब उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अभियुक्त मोहन लाल द्वारा फाइल की गई अपील को खारिज कर दिया था, अब राज्य

अभियुक्त मोहन लाल को परिवीक्षा का फायदा देने वाले आदेश को चुनौती देने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं जबकि राज्य द्वारा इसे उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी ।

5.4 उपरोक्त दलीलें देते हुए विलंब की माफी के लिए आवेदन तथा अपील को भी गुणागुण के आधार पर नामंजूर करने का अनुराध किया गया ।

6. हमने संबंधित पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना । प्रारंभ में, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि अभियुक्त बनवारी लाल को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा विपदग्रस्त/क्षतिग्रस्त फूल चंद के शरीर के मार्मिक अंग पर गंभीर क्षतियां कारित करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था । क्षतिग्रस्त फूल चंद को खोपड़ी के मध्य में मस्तिष्क की झिल्ली तक विस्तारित 10 सें मी. × 1 सें. मी. आकार का हड्डी की गहराई तक एक विदीर्ण घाव था और हड्डी बाहर दिखाई दे रही थी । उसके पश्चात्, विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियुक्त बनवारी लाल को दोषी पाए जाने पर उसे तीन वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । उच्च न्यायालय के समक्ष की गई अपील में अभियुक्त ने दोषसिद्धि को चुनौती नहीं दी अपितु न्यायालय से उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि तक दंडादेश को कम करने का ही अनुरोध करते हुए यह निवेदन किया था कि घटना तारीख 31 मार्च, 1989 को अर्थात् लगभग 26 वर्ष पूर्व घटी थी ; यह कि वे पिछले 26 वर्षों से विचारण का सामना कर रहे हैं और जब घटना घटी थी, तब वे युवा थे और अब वे वृद्ध व्यक्ति हैं । उच्च न्यायालय ने मामले के तथ्यों, कारित की गई क्षतियों की प्रकृति, प्रयुक्त आयुध का विस्तारपूर्वक कोई विश्लेषण किए बिना दंडादेश को मात्र पहले ही भुगत ली गई अवधि (44 दिन) तक कम कर दिया । आक्षेपित निर्णय का सुसंगत भाग निम्नलिखित है :–

> "मैंने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख पर की सुसंगत सामग्री का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया ।
>
> मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, जहां

तक अपीलार्थी मोहन लाल द्वारा फाइल की गई अपील का संबंध है, मैं विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करना न्यायसंगत और उचित नहीं समझता हूं ।

जहां तक अभियुक्त-अपीलार्थी बनवारी लाल द्वारा फाइल की गई अपील का संबंध है, अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल के इन तर्कों को ध्यान में रखते हुए कि अभियुक्त-अपीलार्थी बनवारी लाल पिछले 26 वर्षों से विचारण का सामना कर रहा है ; वह विचारण के दौरान 44 दिनों के लिए अभिरक्षा में रहा है ; वह पहले से दोषसिद्ध व्यक्ति नहीं हैं, मेरे मत में, न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हो जाएगी यदि अपीलार्थी बनवारी लाल को दिए गए दंडादेश को उसके द्वारा परिरोध में पहले ही भुगत ली गई अवधि, जैसा कि इसमें ऊपर उपदर्शित किया गया है, तक कम कर दिया जाता है । अत: इस अपील का निम्नलिखित निदेशों के साथ निपटारा किया जाता है –

(i) अपीलार्थी बनवारी लाल द्वारा फाइल की गई अपील भागत: मंजूर की जाती है ।

(ii) उसकी दोषसिद्धि को कायम रखा जाता है । उसके दंडादेश को कम किया जाता है और उसे उसके द्वारा परिरोध में पहले ही भुगत ली गई अवधि, जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया जाता है, के लिए रिहा किया जाता है ।

(iii) अभियुक्त-अपीलार्थी बनवारी लाल के दंडादेश को निलंबित किया गया था और वह जमानत पर है । उसे अभ्यर्पण करने की आवश्यकता नहीं है और उसके जमानत बंधपत्रों को रद्द किया जाता है ।

(iv) जहां तक अभियुक्त मोहन लाल द्वारा फाइल की गई अपील का संबंध है, चूंकि उसे पहले ही परिवीक्षा का फायदा दिया गया है, मैं उसकी अपील में कोई बल नहीं पाता हूं और परिणामत: अभियुक्त मोहन लाल के संबंध में अपील को विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश की पुष्टि करने के पश्चात् खारिज किया जाता है ।

आक्षेपित निर्णय को इसमें ऊपर उपदर्शित अनुसार उपांतरित किया जाता है ।"

6.1 उच्च न्यायालय ने जिस रीति में अपील पर कार्यवाही की थी और सुसंगत तथ्यों का उल्लेख किए बिना और अपराध की गंभीरता और प्रकृति पर विचार किए बिना दंडादेश को कम किया था, वह असंधार्य है । उच्च न्यायालय ने अपील पर अत्यधिक नैमित्तिक और लापरवाह रीति में कार्यवाही की थी । दंडादेश को कम करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया निर्णय और आदेश कुछ और नहीं, अपितु न्याय की अनुचितता का दृष्टांत है और इस न्यायालय द्वारा समुचित दंड/उपयुक्त दंड अधिरोपित करने के लिए अनेक विनिश्चयों में अधिकथित किए गए सभी सिद्धांतों के विरुद्ध है ।

7. इस प्रक्रम पर, दंडादिष्ट करने वाले सिद्धांतों और किसी प्रस्तुत मामले में समुचित दंड अधिनिर्णीत करने के लिए मानदंडों पर इस न्यायालय के कुछ विनिश्चयों को निर्दिष्ट और विचार किया जाना आवश्यक है ।

(i) **मोहन लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में उच्च न्यायालय ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश को उपांतरित कर दिया था और अभियुक्त को उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि, जो केवल छह दिन की थी, तक के लिए दंडादिष्ट किया था और उच्च न्यायालय द्वारा इस बाबत कतई कोई कारण नहीं दिए गए थे, विधिमान्य कारण तो दूर की बात । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को अपास्त करते हुए इस न्यायालय ने पैरा 9 से 13 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

"9. उच्च न्यायालय ने पूर्वोल्लिखित तात्विक तथ्यों की मात्र अनदेखी कर दी थी और अभियुक्त को उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि, जो इस मामले में केवल छह दिन है, तक के लिए दंडादिष्ट किया गया था । हमारे मत में, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को भारतीय दंड संहता की धारा 325 और 323 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध करके एक उदार

दृष्टिकोण अपनाया है । उच्च न्यायालय द्वारा छह दिन का अल्प दंडादेश अधिरोपित करने के लिए कतई कोई कारण नहीं दिए गए हैं, विधिमान्य कारणों की बात तो दूर । उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार दंडादेश के अधिरोपण से इस न्यायालय की न्यायिक अंतश्चेतना को ठेस पहुंची है ।

10. दंडादिष्ट करने के लिए, भारत में फिलहाल ऐसे संरचनात्मक मार्गदर्शक सिद्धांत नहीं हैं जो या तो विधानमंडल द्वारा या न्यायपालिका द्वारा जारी किए गए हों । तथापि, न्यायालयों ने दंडादेश के अधिरोपण के विषय में कतिपय मार्गदर्शक सिद्धांत विरचित किए हैं । न्यायाधीश को दंडादेश अधिनिर्णीत करने के लिए कानूनी परिसीमाओं के भीतर व्यापक विवेकाधिकार है । चूंकि बहुत से अपराधों में केवल अधिकतम दंड विहित किया गया है और कुछ अपराधों के लिए न्यूनतम दंड विहित किया गया है, इसलिए प्रत्येक न्यायाधीश तद्नुसार अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करता है । अत: इसमें कोई एकरूपता नहीं हो सकती है । तथापि, इस न्यायालय ने बारंबार यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालयों को दंडादेश अधिनिर्णीत करते हुए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय कतिपय सिद्धांतों जैसे आनुपातिकता, भयपरतिकारिता और पुनर्वास की बात को विचार में रखना होगा । आनुपातिकता का विश्लेषण करने में अपराध की गंभीरता का अवधारण करना आवश्यक है जिससे अपराधी के लिए समरूप दंड का अवधारण किया जा सके । अपराध की गंभीरता, अन्य बातों के अतिरिक्त, अपहानिकारिता पर भी निर्भर करती है ।

11. सोमन **बनाम** केरल राज्य [(2013) 11 एस. सी. सी. 382 = (2012) 4 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1] वाले मामले में इस न्यायालय ने पैरा 27 में यह मत व्यक्त किया था –

> '27.1 न्यायालयों के दंडादेश के विनिश्चय विभिन्न तर्काधारों – जिनमें से सबसे अधिक महत्वपूर्ण आनुपातिकता और भयपरतिकारिता हैं, पर आधारित होने चाहिएं ।

27.2 दांडिक कार्रवाई के परिणाम का प्रश्न आनुपातिकता और भयपरतिकारिता, दोनों के दृष्टिकोण से सुसंगत हो सकता है ।

27.3 जहां तक आनुपातिकता का संबंध है, दंडादेश अवश्य अपराध की गंभीरता और घोरता के अनुरूप होना चाहिए ।

27.4 अपराध की गंभीरता को परखने के लिए सुसंगत कारकों में से एक कारक इससे होने वाला परिणाम है ।

27.5 ऐसे परिणाम/अपहानि, जिसका आशय न रहा हो, के लिए फिर भी अभियुक्त पर उचित रूप से दंड आरोपित किया जा सकता है, यदि वे परिणाम युक्तियुक्त रूप से पूर्वानुमान करने योग्य हों । शराब का अयुक्त और भूमिगत होकर विनिर्माण करने के मामले में विषैलेपन की संभावनाएं इतनी अधिक होती हैं कि न केवल इसके विनिर्माता को, अपितु वितरक और थोक विक्रेता को भी उपयोक्ता को इसके होने वाले संभाव्य जोखिमों का ज्ञान होगा । इसलिए भले ही उपयोक्ता को प्रत्यक्ष रूप से कोई अपहानि कारित करने का आशय न रहा हो, तो भी कुछ न कुछ गुरुत्तरकारी अपराधिता इससे अवश्य संबद्ध होगी यदि उपयोक्ता को नकली शराब पीने के परिणामस्वरूप कोई गंभीर उपहति होती है या उसकी मृत्यु हो जाती है ।'

12. अलिस्टर एंथेनी परेरा **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(2012) 2 एस. सी. सी. 648 = (2012) 1 एस. सी. सी. (सिविल) 848 = (2012) 1 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 953] वाले मामले में इस न्यायालय का इसी प्रकार का निर्णय है, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया है (एस. सी. सी. पृष्ठ 674 पैरा 84) :–

'84. अपराध के मामलों में दंडादिष्ट करना एक महत्वपूर्ण काम है । दांडिक विधि के प्रमुख उद्देश्यों में से एक उद्देश्य समुचित, पर्याप्त, न्यायसंगत और आनुपातिक दंडादेश अधिरोपित करना है, जो अपराध की प्रकृति और गंभीरता

तथा जिस रीति में अपराध किया जाता है, के अनुरूप हो । अपराध के साबित होने पर अभियुक्त को दंडादिष्ट करने के लिए कोई नियमनिष्ठ सिद्धांत नहीं है । न्यायालयों ने कतिपय सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं: दंडादिष्ट करने की नीति का दोहरा उद्देश्य भयपरतिकारिता और सुधार है । कितने दंडादेश से न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हो जाएगी, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और न्यायालय को अपराध की गंभीरता, अपराध के हेतु, अपराध की प्रकृति और सभी अन्य विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए ।'

13. पूर्वोल्लिखित मताभिव्यक्तियों से यह स्पष्ट है कि दंड अधिरोपण को शासित करने वाले सिद्धांत प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेंगे । तथापि, दंडादेश समुचित, पर्याप्त, न्यायसंगत, आनुपातिक और अपराध की प्रकृति तथा गंभीरता और उस रीति के अनुरूप होना चाहिए, जिस रीति में अपराध कारित किया गया है । दंडादेश अधिरोपित करते समय अपराध की गंभीरता, अपराध करने के लिए हेतु, अपराध की प्रकृति और सभी अन्य विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । न्यायालय दंडादेश अधिरोपित करते समय नैमितिक रीति नहीं अपना सकते हैं क्योंकि दंडादिष्ट करने की प्रक्रिया में अपराध और अपराधी समान रूप से महत्वपूर्ण होते हैं । न्यायालयों को अवश्य इस बात पर विचार करना चाहिए कि जनता का न्यायिक व्यवस्था में विश्वास कम न हो । अपर्याप्त दंडादेशों के अधिरोपण से अधिक अपहानि न्याय व्यवस्था को होगी और ऐसे हालत हो सकते हैं जहां विपदग्रस्त का न्यायिक व्यवस्था से विश्वास उठ जाए और वह व्यक्तिगत रूप से प्रतिशोध लेने लगे ।"

(ii) **ऊधम** (उपर्युक्त) वाले मामले में पैरा 11 से 13 में निम्नलिखित मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया है :–

"11. हमारी यह राय है कि निचले न्यायालयों द्वारा अपर्याप्त या गलत दंडादिष्ट करने के कारण इस न्यायालय के

समक्ष बहुत अधिक मामले फाइल किए जा रहे हैं । हमने बारंबार उस लापरवाही के प्रति सचेत किया है जिसमें कतिपय मामलों में दंडादेश दिया जाता है । इसमें दो राय नहीं है कि दंडादिष्ट करने के पहलू को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि दांडिक न्याय व्यवस्था के इस भाग का समाज पर निर्णायक असर पड़ता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह राय है कि हमारे द्वारा इस पहलू पर और अधिक स्पष्टता प्रदान करने की आवश्यकता है ।

12. अपराधों के लिए दंडादिष्ट करने की बात का विश्लेषण तीन परीक्षणों की कसौटी पर किया जाना चाहिए अर्थात् अपराध परीक्षण, अपराधी परीक्षण और तुलनात्मक आनुपातिकता परीक्षण । अपराध परीक्षण में योजना का विस्तार, आयुध का चयन, अपराध का तरीका, तरीके का निपटान (यदि कोई है), अभियुक्त की भूमिका, अपराध का समाज-विरुद्ध या घृणित स्वरूप, विपदग्रस्त की अवस्था जैसे पहलू अंतवर्लित हैं । अपराधी परीक्षण में अपराधी की आयु, अपराधी का लिंग, अपराधी की आर्थिक दशा या सामाजिक पृष्ठभूमि, अपराध के लिए प्रेरणा जैसे कारकों, प्रतिरक्षा की उपलब्धता, मानसिक दशा, मृतक या मृतक समूह से किसी द्वारा उकसाहट, विचारण में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व, अपील प्रक्रिया में किसी न्यायाधीश द्वारा असहमति, पश्चाताप, सुधार की संभाव्यता, पूर्विक आपराधिक अभिलेख (लंबित मामलों को न लिया जाए) और कोई अन्य सुसंगत बातें (यह सूची संपूर्ण नहीं है) का निर्धारण अंतर्वलित है ।

13. इसके अतिरिक्त, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि अपराध परीक्षण के अधीन गंभीरता को अभिनिश्चित किए जाने की आवश्यकता होती है । अपराध की गंभीरता को (i) विपदग्रस्त की शारीरिक सुस्वस्थता ; (ii) तात्विक समर्थन या सुख-सुविधाओं की हानि ; (iii) अपमान की मात्रा ; और (iv) एकांतता का भंग द्वारा अभिनिश्चित किया जा सकता है ।"

उक्त विनिश्चय में, इस न्यायालय ने पुन: उस लापरवाह रीति के बारे में सचेत किया था, जिसमें कतिपय मामलों में दंडादिष्ट किया जाता है ।

(iii) **सतीश कुमार जयंती लाल डाबगर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया है कि दंडादिष्ट करने के पीछे का प्रयोजन और औचित्य न केवल प्रतिकार, अक्षम कर देना, पुनर्वास है अपितु भयपरतिकारिता भी है ।

8. इस न्यायालय द्वारा दंडादिष्ट करने के लिए अधिकथित किए गए सिद्धांतों को प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण अत्यधिक लापरवाह रहा है । अत: उच्च न्यायालय का आदेश इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने योग्य है । मात्र विलंब के तकनीकी आधार पर और मात्र इस आधार पर कि आक्षेपित निर्णय और आदेश, जो असंधार्य है, के पश्चात् अभियुक्त अपने जीवन में पुन:स्थापित हो गए हैं और उनका आचरण तब से लेकर संतोषजनक रहा है और वे किसी आपराधिक क्रियाकलाप में अंतर्ग्रस्त नहीं रहे हैं, विलंब को माफ न करने और अपील पर गुणागुण के आधार पर विचार न करने का आधार नहीं है ।

9. प्रस्तुत मामले में, यह साबित किया गया है कि विपदग्रस्त फूल चंद को शरीर के मार्मिक भाग अर्थात् सिर पर एक गंभीर क्षति पहुंची थी और खोपड़ी का अस्थिभंग हो गया था । डाक्टर ने यह भी राय व्यक्त की थी कि क्षति जीवन के लिए खतरनाक थी और क्षतिग्रस्त फूल चंद को पहुंची क्षति प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी । भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अनुसार, जो कोई किसी कार्य को ऐसे आशय या ज्ञान से और ऐसी परिस्थितियों में करेगा कि यदि वह उस कार्य द्वारा मृत्यु कारित कर देता तो वह हत्या का दोषी होता, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा, और यदि ऐसे कार्य द्वारा किसी व्यक्ति को उपहति कारित हो जाए, तो वह अपराधी या तो आजीवन कारावास से या ऐसे दंड से दंडनीय होगा, जैसा भारतीय दंड संहिता की धारा 307 में वर्णित

है । अत: प्रस्तुत मामले में, अभियुक्तों को आजीवन कारावास और/या कम से कम दस वर्ष तक का कारावास भुगतने का दंडादेश दिया जा सकता था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियुक्त बनवारी लाल को तीन वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया था । अत: विद्वान् विचारण न्यायालय ने केवल तीन वर्ष का कठोर कारावास अधिरोपित करते हुए पहले ही एक उदार दृष्टिकोण अपनाया था । इसलिए उच्च न्यायालय को उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था । यद्यपि उच्च न्यायालय ने किसी बात का उल्लेख नहीं किया है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय जिस बात से प्रभावित हुआ था, वह अभियुक्तों की ओर से दी गई यह दलील है कि घटना तारीख 31 मार्च, 1989 को अर्थात् 26 वर्ष पूर्व घटी थी ; यह कि वे विगत 26 वर्षों से विचारण का सामना कर रहे हैं ; और जब घटना घटी थी, वे युवा थे और अब वे वृद्ध व्यक्ति हैं । पूर्वोक्त बातें एक समुचित और/या पर्याप्त दंडादेश अधिनिर्णीत करते समय एकमात्र विचारणा नहीं हो सकती हैं । यहां तक कि अभियुक्तों की ओर से दी गई यह दलील कि भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन कोई न्यूनतम दंडादेश नहीं है और दंडादेश दस वर्ष तक हो सकेगा, इस दलील का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया जाता है कि विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसम्मत रूप से किया जाना चाहिए और दंडादेश आनुपातिक रूप से तथा कारित किए गए अपराध की प्रकृति और गंभीरता को देखते हुए तथा दंडादेश अधिरोपित करने के लिए इसमें ऊपर निर्दिष्ट सिद्धांतों पर विचार करते हुए अधिरोपित किया जाना चाहिए ।

10. केवल यह कारण कि अपील को विनिश्चित किए जाने के समय तक एक लंबी अवधि बीत गई है, ऐसा दंड अधिनिर्णीत करने का आधार नहीं हो सकता है, जो अननुपातिक और अपर्याप्त है । उच्च न्यायालय ने उन सुसंगत कारकों पर कतई विचार नहीं किया है जिन पर समुचित/उपयुक्त दंड/दंडादेश अधिरोपित करते समय किया जाना आवश्यक है । जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, उच्च न्यायालय ने अपील पर अत्यधिक लापरवाह रीति में विचार किया था

और निपटारा किया था । उच्च न्यायालय ने अपील का निपटारा संक्षिप्त रास्ता अपनाकर किया था । जिस रीति में उच्च न्यायालय ने अपील पर विचार किया था और निपटारा किया था, वह अत्यंत निंदनीय है । हमारे सामने विभिन्न उच्च न्यायालयों के अनेक निर्णय आए हैं और यह पाया गया है कि बहुत से मामलों में दांडिक अपीलों का निपटारा एक सरसरी रीति में और काट-छांट की पद्धति अपनाकर किया जाता है । कुछ मामलों में, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धियों को कोई पर्याप्त कारण दिए बिना और अभियुक्त की ओर से दी गई इन दलीलों को मात्र अभिलिखित करके कि उनकी दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 या 304 भाग 2 में परिवर्तित किया जा सकता है, भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 या धारा 304 भाग 2 में संपरिवर्तित कर दिया जाता है । वर्तमान मामले जैसे मामलों में अभियुक्तों ने दोषसिद्धि को कोई चुनौती नहीं दी थी और दंडादेश में कमी करने का अनुरोध किया था और इस पर विचार किया गया तथा कोई अतिरिक्त कारण दिए बिना और उन सुसंगत कारकों पर विचार किए बिना, जिन पर समुचित दंड/दंडादेश अधिरोपित करते समय विचार किया जाना आवश्यक है, एक अपर्याप्त और अनुचित दंडादेश अधिरोपित किया गया । हम दांडिक अपीलों का संक्षिप्त रास्ता अपनाकर निपटारा करने की ऐसी परिपाटी की भर्त्सना करते हैं । अत: उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त बनवारी लाल के संबंध में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित तीन वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को पहले ही भुगत ली गई अवधि (44 दिन) तक कम करते हुए पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश पूर्णत: असंधार्य है और इसे अभिखंडित और अपास्त किया जाना चाहिए ।

11. अब जहां तक राज्य द्वारा अभियुक्त मोहन लाल के विरुद्ध फाइल की गई अपील का संबंध है, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यहां तक कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने उक्त अभियुक्त को परिवीक्षा का फायदा प्रदान किया था, जिसके विरुद्ध राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष कोई अपील नहीं की थी और अभियुक्त ने ही अपील फाइल की थी जिसे खारिज कर दिया गया था । अत: राज्य को

अभियुक्त मोहन लाल के विरुद्ध वर्तमान अपील फाइल नहीं करनी चाहिए थी जबकि उच्च न्यायालय के समक्ष उसकी अपील खारिज हो गई थी और दोषसिद्धि की पुष्टि की गई थी । यदि राज्य परिवीक्षा का फायदा प्रदान करने के विरुद्ध व्यथित था, तो उस दशा में, प्रथम बार में राज्य को उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करनी चाहिए थी ।

12. पूर्वोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से वर्तमान अपील, जहां तक अभियुक्त बनवारी लाल का संबंध है, मंजूर की जाती है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंडादेश के आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करते हुए और अभियुक्त बनवारी लाल को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अधिरोपित तीन वर्ष के कठोर कारावास को उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि (44 दिन) तक दंडादिष्ट करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । अभियुक्त बनवारी लाल को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन तीन वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश को तद्द्वारा प्रत्यावर्तित किया जाता है । अभियुक्त बनवारी लाल को शेष दंडादेश भुगतने के लिए आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर समुचित जेल प्राधिकारी/संबंधित न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करने का निदेश दिया जाता है । जहां तक राज्य द्वारा अभियुक्त मोहन लाल के विरुद्ध फाइल की गई अपील का संबंध है, इसे तद्द्वारा खारिज किया जाता है ।

अपील भागत: मंजूर की गई ।

जस.

[2022] 2 उम. नि. प. 180

भारत संघ और अन्य

बनाम

आशीष अग्रवाल

[2022 की सिविल अपील सं. 3005]

4 मई, 2022

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना

आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) – धारा 147 से 151 (वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथासंशोधित) – पुनर्निर्धारण –संशोधन तारीख 1 अप्रैल, 2021 से प्रवृत्त होने के बावजूद आय-कर विभाग द्वारा निर्धारण से छूट प्राप्त आय के लिए निर्धारितियों को असंशोधित धारा 148 के अधीन कारण बताओ सूचना जारी किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा इन्हें नए उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए विधि की दृष्टि से दूषित होने के आधार पर अभिखंडित किया जाना – अपील – संधार्यता – यद्यपि वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित नई धारा 148क के अधीन विहित प्रक्रिया का पालन किए बिना धारा 148 के अधीन कोई सूचना जारी नहीं की जा सकती है, तो भी इस बात को दृष्टिगत करते हुए कि नए उपबंध कर प्रशासन का सरलीकरण करने, अनुपालन को आसान बनाने और मुकदमेबाजी को कम करने के विनिर्दिष्ट लक्ष्य और उद्देश्य तथा निर्धारितियों के अधिकारों और हितों की संरक्षा करने के साथ-साथ लोक हित में प्रतिस्थापित किए गए हैं और चूंकि पुनर्निर्धारण सूचनाओं को अभिखंडित करने से सरकारी खजाने को हानि होगी, अत: असंशोधित धारा 148 के अधीन जारी की गई सूचनाओं को प्रतिस्थापित धारा 148क के अधीन जारी किया गया समझा जाना उचित होगा ।

इन अपीलों के तथ्य इस प्रकार हैं कि वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा आय-कर अधिनियम की धारा 147 से 151 का संशोधन किया गया था, जो तारीख 1 अप्रैल, 2021 से प्रवृत्त हुआ था । वित्त

अधिनियम, 2021 द्वारा आय-कर अधिनियम, 1961 की प्रतिस्थापित धाराएं 147 से 151 तारीख 1 अप्रैल, 2021 से प्रवृत्त होने के बावजूद राजस्व विभाग ने इसकी तत्कालीन धारा 148 अधीन संबंधित निर्धारितियों को लगभग 90,000 पुनर्निर्धारण सूचनाएं जारी की थीं । उक्त पुनर्निर्धारण सूचनाएं विभिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष रिट याचिकाओं की विषयवस्तु थीं । संबंधित उच्च न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया कि आय-कर अधिनियम, 1961 की तत्कालीन धारा 148 के अधीन जारी की गई सभी संबंधित पुनर्निर्धारण सूचनाएं विधि की दृष्टि में दूषित हैं क्योंकि तारीख 1 अप्रैल, 2021 के पश्चात् जारी की गई पुनर्निर्धारण सूचनाएं वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित आय-कर अधिनियम, 1961 की प्रतिस्थापित धारा 147 से 151 द्वारा शासित होती हैं । परिणामत:, संबंधित उच्च न्यायालयों ने आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 148 के अधीन जारी की गई सभी पुनर्निर्धारण सूचनाओं को, जहां कहीं उन्हें चुनौती दी गई थी, अपास्त कर दिया । इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया सामान्य निर्णय और आदेश वर्तमान अपीलों की विषयवस्तु है । राजस्व विभाग द्वारा व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा आय-कर अधिनियम के प्रतिस्थापित उपबंधों के अधीन आय-कर अधिनियम की धारा 148क के अधीन विहित प्रक्रिया का पालन किए बिना कोई सूचना जारी नहीं की जा सकती है । आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन दी गई सूचना के साथ निर्धारण अधिकारी के लिए आय-कर अधिनियम की धारा 148क के अधीन पारित आदेश को तामील करना आवश्यक है । आय-कर अधिनियम की धारा 148क एक नया उपबंध है जो एक पूर्ववर्ती शर्त की प्रकृति का है । इस प्रकार, आय-कर अधिनियम की धारा 148क के पुर:स्थापन को कर प्रशासन का सरलीकरण करने, अनुपालन को आसान बनाने और मुकदमेबाजी को कम करने के अंतिम उद्देश्य को प्राप्त करने के लक्ष्य की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम कहा जा सकता है । तथापि, धारा 148क के द्वारा प्रक्रिया को अब सुव्यवस्थित और सरल बनाया गया है । इसमें यह उपबंध किया गया है कि धारा 148 के अधीन कोई

भी सूचना जारी करने से पूर्व निर्धारण अधिकारी (i) उस जानकारी के संबंध में जिससे लगता है कि कर से प्रभार्य आय निर्धारण से छूट गई है, विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के अनुमोदन से कोई जांच, यदि अपेक्षित हो, करेगा ; (ii) निर्धारिती को विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन से सुनवाई का अवसर देगा ; (iii) खंड (ख) में निर्दिष्ट कारण बताओ सूचना के जवाब में प्रस्तुत किए गए निर्धारिती के उत्तर, यदि कोई हो, पर विचार करेगा ; (iv) निर्धारिती के उत्तर सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह अभिनिश्चय करेगा कि क्या यह आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन सूचना जारी करने के लिए एक उपयुक्त मामला है या नहीं ; और (v) निर्धारण अधिकारी नियत अवधि के भीतर एक विनिर्दिष्ट आदेश पारित करेगा । अत: आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन सूचना जारी किए जाने से पूर्व सभी सुरक्षापायों का उपबंध किया गया है । प्रत्येक प्रक्रम पर, यहां तक कि धारा 148क(क) के अनुसार जांच करने के लिए भी, विनिर्दिष्ट प्राधिकारी का अनुमोदन आवश्यक है । केवल उस मामले में जहां निर्धारण अधिकारी की यह राय है कि धारा 148क(ख) के अधीन कोई सूचना जारी किए जाने से पूर्व और निर्धारिती को एक अवसर दिया जाना चाहिए, कोई जांच करना आवश्यक है तो निर्धारण अधिकारी ऐसा कर सकेगा और कोई जांच कर सकेगा । इस प्रकार, यदि निर्धारण अधिकारी की यह राय है कि ऐसी जानकारी के संबंध में जिससे यह लगता है कि कर से प्रभार्य आय निर्धारण से छूट गई है, कोई जांच करना आवश्यक है, तो निर्धारण अधिकारी ऐसा कर सकता है, तथापि, विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन से । प्रतिस्थापित धारा 149 आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन सूचना जारी करने के लिए समय-सीमा को शासित करने वाला उपबंध है । आय-कर अधिनियम की प्रतिस्थापित धारा 149 ने ऐसी कोई सूचना जारी करने के लिए अनुज्ञेय समय-सीमा को कम करके तीन वर्ष कर दिया है और केवल आपवादिक मामलों में यह दस वर्ष है । इसमें और अधिक अतिरिक्त रक्षोपायों का भी उपबंध किया गया है जो पहले वित्त अधिनियम, 2021 से पूर्व की व्यवस्था में नहीं थे । इस प्रकार, वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित नए उपबंध उपचारात्मक और हितकारी प्रकृति के होने के कारण और निर्धारिती के अधिकारों और हित की भी संरक्षा करने के

लिए एक विनिर्दिष्ट उद्देश्य और लक्ष्य के साथ प्रतिस्थापित किए गए हैं तथा ये लोकहित में होने के कारण संबंधित उच्च न्यायालयों ने ठीक ही यह अभिनिर्धारित किया है कि नए उपबंधों का फायदा विगत निर्धारण वर्षों से संबंधित कार्यवाहियों के संबंध में भी उपलब्ध कराया जाएगा, बशर्ते धारा 148 के अधीन सूचना तारीख 1 अप्रैल, 2021 को या इसके पश्चात् जारी की गई है । हम विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा ऐसा अभिनिर्धारित करने में अपनाए गए दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत हैं । तथापि, इसके साथ-साथ कई उच्च न्यायालयों के निर्णयों में यह निष्कर्ष निकाला गया कि कतई कोई पुनर्निर्धारण कार्यवाहियां नहीं की जाएंगी, भले ही वे वित्त अधिनियम, 2021 के अधीन और आय-कर अधिनियम की प्रतिस्थापित धारा 147 से 151 के अनुसार अनुज्ञेय हों । राजस्व विभाग को उपचार विहिन नहीं किया जा सकता है और पुनर्निर्धारण कार्यवाहियों के उद्देश्य और प्रयोजन को विफल नहीं किया जा सकता है । यह सही है कि एक सद्भाविक भूल और विभिन्न अधिसूचनाओं द्वारा बाद में समय के विस्तार को देखते हुए राजस्व विभाग ने तारीख 1 अप्रैल, 2021 से संशोधन के प्रवर्तित होने के पश्चात् धारा 148 के अधीन आक्षेपित सूचनाएं जारी की थीं । हमारे मत में, ये सूचनाएं असंशोधित अधिनियम के अधीन जारी नहीं की जानी चाहिए थीं और वित्त अधिनियम, 2021 के अनुसार आय-कर अधिनियम की धारा 147 से 151 के प्रतिस्थापित उपबंधों के अधीन जारी की जानी चाहिए थीं । संशोधनों को असलियत में लागू किया गया प्रतीत नहीं होता है क्योंकि राजस्व विभाग के अधिकारियों का यह सद्भाविक विश्वास रहा होगा कि संशोधनों को अभी तक प्रवर्तित नहीं किया गया होगा । इसलिए इस न्यायालय की यह राय है कि इस संबंध में कुछ गुंजाइश दिखाई जानी चाहिए थी, जो उच्च न्यायालय ऐसा कर सकते थे । अत: उच्च न्यायालयों को आय-कर अधिनियम के असंशोधित उपबंध के अधीन जारी की गई पुनर्निर्धारण सूचनाओं को अभिखंडित और अपास्त करने की बजाय असंशोधित अधिनियम/आय-कर अधिनियम के असंशोधित उपबंध को धारा 148क के नए उपबंध के अनुसार आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन जारी किया गया समझा जाना चाहिए था और राजस्व विभाग को वित्त अधिनियम, 2021 के अनुसार आय-कर अधिनियम की धारा 147 से 151 के प्रतिस्थापित उपबंधों के अनुसार

पुनर्निर्धारण कार्यवाहियों में सभी प्रक्रियात्मक अपेक्षाओं का पालन करने और प्रतिरक्षाओं, जो निर्धारिती को आय-कर अधिनियम की धारा 147 से 151 के प्रतिस्थापित उपबंधों के अधीन उपलब्ध हो सकती हैं और जो वित्त अधिनियम, 2021 के अधीन और विधि में उपलब्ध हो सकती हैं, के अधीन रहते हुए अग्रसर होने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए था । अत: यह न्यायालय संबंधित उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किए गए निर्णयों और आदेशों का उपांतरण करने के लिए निम्नलिखित प्रस्तावित करता है :– (i) संबंधित निर्धारितियों को धारा 148 के अधीन जारी की गई संबंधित आक्षेपित सूचनाओं को वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथा प्रतिस्थापित आय-कर अधिनियम की धारा 148क के अधीन जारी किया गया समझा जाएगा और कारण बताओ सूचनाओं को धारा 148क(ख) के निबंधनों के अनुसार समझा जाएगा । संबंधित निर्धारण अधिकारी आज से तीस दिन के भीतर निर्धारितियों को राजस्व विभाग द्वारा अवलंब ली गई जानकारी और सामग्री प्रदान करेंगे जिससे निर्धारिती उसके पश्चात् दो सप्ताह के भीतर सूचनाओं का उत्तर दे सकें । (ii) उन सूचनाओं के संबंध में, जो तारीख 1 अप्रैल, 2021 से आज तक असंशोधित अधिनियम की धारा 148 के अधीन जारी की गई हैं और इसमें उच्च न्यायालय द्वारा अभिखंडित की गई सूचनाएं भी सम्मिलित हैं, धारा 148क(क) के अधीन विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन से कोई जांच करने की अपेक्षा का एक बारगी उपाय के रूप में त्याग किया जाए । (iii) निर्धारण अधिकारी उसके पश्चात् धारा 148क(घ) के निबंधनों के अनुसार प्रत्येक संबंधित निर्धारिती के संबंध में धारा 148क(ख) के अधीन यथाअपेक्षित प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् एक आदेश पारित करेंगे । (iv) वे सभी प्रतिरक्षाएं, जो निर्धारिती को धारा 149 के अधीन उपलब्ध हो सकती हैं और/या वित्त अधिनियम, 2021 के अधीन और विधि में उपलब्ध हो सकती हैं और निर्धारण अधिकारी को वित्त अधिनियम, 2021 के अधीन जो भी अधिकार उपलब्ध हों, उन्हें खुला रखा जाए और/या उपलब्ध किया जाना जारी रखा जाएगा; और (v) यह आदेश संबंधित उच्च न्यायालयों द्वारा आय-कर अधिनियम की असंशोधित धारा 148 के अधीन जारी की गई किसी प्रकार की सूचनाओं को अभिखंडित करते हुए पारित किए गए संबंधित निर्णयों और आदेशों को इस बात को विचार में लाए बिना

प्रतिस्थापित/उपांतरित करेगा कि उन्हें इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है या नहीं । (पैरा 6.2, 6.4, 6.5, 6.6, 7 और 8)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2003]	(2003) 1 एस. सी. सी. 72 : **जीकेएन ड्राइवशाफ्ट्स (इंडिया) लि.** बनाम **आय-कर अधिकारी और अन्य** ।	6, 6.3

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2022 की सिविल अपील सं. 3005 (इसके साथ 2022 की सिविल अपील सं. 3006, 3007, 3008, 3009, 3010, 3011, 3012, 3013, 3014, 3015, 3016, 3017, 3019, 3020, 3610, 3604, 3603, 3607, 3602, 3608, 3609, 3605, 36011 और 3606).

2021 के रिट कर सं. 742 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 20 सितंबर, 2021 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एन. वेंकटरमन, अपर महा-सालिसिटर, बी. के. सतीजा, विकास बंसल, (सुश्री) रश्मि मल्होत्रा, वी. चंद्रशेखर भारती, चंद्र कांत शर्मा, मनीष पुष्करण, शशांक बाजपेयी, संतोष कुमार, संजय कुमार यादव, अमित शर्मा, (सुश्री) मेघा कर्णवाल और राज बहादुर यादव

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री सी. ए. सुंदरम, एस. गणेश, ज्येष्ठ अधिवक्तागण, (सुश्री) कविता झा, वैभव कुलकर्णी, अनंत मान, (सुश्री) अर्चना सहदेव, (सुश्री) प्रगति अग्रवाल, गौरव जैन, (सुश्री) अक्षिता गोयल,

अभिनव अग्रवाल, शुभम गुप्ता, राजीव के. विरमानी, अतुल मल्होत्रा, कपिल गोयल, धनंजय गर्ग, संदीप गोयल, डी. के. गर्ग, अभिषेक गर्ग, निशित अग्रवाल, हर्ष मिश्रा, डा. राकेश गुप्ता, अंभोज कुमार सिन्हा, सोमिल अग्रवाल, वेद कुमार जैन, ऋच मिश्रा, सुबोध एस. पाटिल, कुश चतुर्वेदी, (सुश्री) प्रियाश्री शर्मा पी. एच., अभिनव मेहरोत्रा, सय्यद फिरोज आलम, वेंकटेश चौरसिया, दिव्यांशु अग्रवाल, वैभव नीति और (सुश्री) माधवी अग्रवाल ।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – 2022 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 6448, 5381, 5079, 6092, 6534, 6158, 6316, 6281, 6545 और 6038 में इजाजत दी गई ।

1. 2021 की रिट कर सं. 524 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए उस आक्षेपित सामान्य निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए राजस्व विभाग ने ये अपीलें फाइल की हैं, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने उक्त रिट याचिकाओं को मंजूर किया और राजस्व विभाग द्वारा आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 148 के अधीन जारी की गई कई पुनर्निर्धारण सूचनाओं को इस आधार पर अभिखंडित कर दिया कि ये सूचनाएं वित्त अधिनियम, 2021, जिसने आय-कर अधिनियम को नए उपबंध अर्थात् धारा 147, 151 पुर:स्थापित करके तारीख 1 अप्रैल, 2021 से संशोधित किया है, द्वारा किए गए संशोधन को ध्यान में रखते हुए विधि के अनुसार दूषित हैं ।

2. इसी प्रकार के निर्णय और आदेश विभिन्न अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किए गए हैं, जिनमें दिल्ली उच्च न्यायालय, राजस्थान उच्च न्यायालय, कलकत्ता उच्च न्यायालय, मद्रास उच्च न्यायालय, बंबई उच्च न्यायालय सम्मिलित हैं, जिनका विवरण

निम्नलिखित है :

क्र. सं.	विवरण
1.	अशोक कुमार अग्रवाल बनाम भारत संघ (इलाहाबाद उच्च न्यायालय) 2021 की रिट कर सं. 524 में माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 30.09.2021 को पारित निर्णय
2.	बीपीआईपी इंफ्रा प्रा. लि. बनाम आय-कर अधिकारी और अन्य (राजस्थान उच्च न्यायालय) 2021 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 13297 में माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर द्वारा तारीख 25.11.2021 को पारित निर्णय
3.	मनमोहन कोहली बनाम एसीआईपी (दिल्ली उच्च न्यायालय) 2021 की रिट याचिका (सिविल) सं. 6176 में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय
4.	बगारिया प्रॉपर्टीज एंड इंवेस्टमेंट प्रा. लि. बनाम भारत संघ (कलकत्ता उच्च न्यायालय) 2021 की डब्ल्यू. पी. ओ. सं. 244 में माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 17.01.2022 को पारित निर्णय
5.	मनोज जैन बनाम भारत संघ (कलकत्ता उच्च न्यायालय) 2021 की डब्ल्यू. पी. ए. सं. 11950 में माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 17.01.2022 को पारित निर्णय
6.	सुदेश तनेजा बनाम आय-कर अधिकारी (राजस्थान उच्च न्यायालय) 2022 की डी. बी. सिविल रिट याचिका सं. 969 में माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 27 जनवरी, 2022 को पारित निर्णय

7.	वेल्लोर इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी बनाम सीबीडीटी (मद्रास उच्च न्यायालय) 2021 की रिट याचिका सं. 15019 में माननीय मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 04.02.2022 को पारित निर्णय
8.	टाटा कम्युनिकेशंस ट्रांसफॉर्मेशन सर्विसेज बनाम एसीआईटी (बंबई उच्च न्यायालय) 2021 की रिट याचिका सं. 1334 में बंबई उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 29.03.2022 को पारित निर्णय

इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि राजस्व विभाग द्वारा तारीख 1 अप्रैल, 2021 के पश्चात् असंशोधित आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन लगभग 90,000 ऐसी पुनर्निर्धारण सूचनाएं जारी की गई थीं, जो देश भर के विभिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष 9,000 से अधिक रिट याचिकाओं की विषयवस्तु थी और विभिन्न निर्णयों और आदेशों द्वारा, जिनके विवरण उपरोक्त अनुसार हैं, उच्च न्यायालयों ने समरूप दृष्टिकोण अपनाया है और धारा 148 के अधीन जारी की गई अलग-अलग पुनर्निर्धारण सूचनाओं को एक-समान आधारों पर अपास्त किया है ।

2.1 इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया सामान्य निर्णय और आदेश वर्तमान अपीलों की विषयवस्तु है । विद्वान् अपर महा-सालिसिटर, श्री एन. वेंकटरमन ने न्यायालय को बताया कि राजस्व विभाग विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किए गए समरूप निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध अपीलें फाइल करने पर विचार कर रहा है । तथापि, चूंकि विवाद्यक सामान्य है और इससे कार्यवाहियों की बहुलता होगी तथा इस न्यायालय के भार को कम करने के लिए और इसमें नीचे उल्लिखित कारणों से, चूंकि हमने भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक आदेश पारित करने का प्रस्ताव किया है, इसलिए यह आदेश विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा समरूप विवाद्यक पर पारित किए गए सभी अन्य निर्णयों और आदेशों को शासित करेगा । इसलिए हम यह मत व्यक्त करते हैं कि राजस्व

विभाग को अलग से व्यक्तिगत अपीलें फाइल करने की आवश्यकता नहीं है, जिनकी संख्या 9,000 से अधिक हो सकती है ।

2.2 वास्तव में, हमने संबंधित निर्धारिती की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री सी. ए. सुंदरम् को सुना, जो दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष भी हाजिर हुए थे ।

3. संविवाद का मूल्यांकन करने के लिए, कुछ तथ्यों और तारीख 1 अप्रैल, 2021 से पूर्व और तारीख 1 अप्रैल, 2021 के पश्चात् लागू सुसंगत कानूनी उपबंधों को निर्दिष्ट किया जाना आवश्यक है ।

वित्त अधिनियम, 2021 के प्रवृत्त होने से पूर्व पुनर्निर्धारण कार्यवाहियों को शासित करने वाली प्रक्रिया निम्नलिखित उपबंधों द्वारा शासित होती थी :–

"**निर्धारण से छूट गई आय**

147. यदि निर्धारण अधिकारी का यह विश्वास करने का कारण है कि कर से प्रभार्य कोई आय किसी निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारण से छूट गई है, तो वह धारा 148 से 153 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संबंधित निर्धारण वर्ष के लिए (जिसे इस धारा में और धारा 148 से धारा 153 में इसके पश्चात् सुसंगत निर्धारण वर्ष कहा गया है), यथास्थिति, ऐसी आय का और कर से प्रभार्य किसी अन्य आय का भी, जो निर्धारण से छूट गई है, और इस धारा के अधीन कार्यवाहियों के दौरान तत्पश्चात् उसकी जानकारी में आती है, निर्धारण या पुनर्निर्धारण कर सकेगा अथवा हानि का अवक्षण मोक या किसी अन्य मोक की पुन: संगणना कर सकेगा :

परंतु जहां धारा 143 की उपधारा (3) या इस धारा के अधीन निर्धारण, सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए किया गया है वहां सुसंगत निर्धारण वर्ष के अंत से चार वर्ष की समाप्ति के पश्चात् इस धारा के अधीन कोई कार्यवाही तभी की जाएगी जब कर से प्रभार्य कोई, आय धारा 139 के अधीन या धारा 142 की उपधारा (1) या धारा 148 के अधीन जारी की गई सूचना के उत्तर में विवरणी देने में अथवा उस निर्धारण वर्ष के लिए उसके निर्धारण के लिए आवश्यक

सभी तात्विक तथ्यों के पूर्णत: और सही रूप से प्रकट करने में निर्धारिती की ओर से असफलता के कारण ऐसे निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारण से छूट गई है :

परंतु यह और कि पहले परंतुक में अंतर्विष्ट कोई बात वहां लागू नहीं होगी, जहां भारत के बाहर स्थित किसी आस्ति (जिसके अंतर्गत किसी अस्तित्व में वित्तीय हित भी है) के संबंध में कर से प्रभार्य कोई आय, किसी निर्धारण वर्ष के लिए, कर निर्धारण से छूट गई है :

परंतु यह भी कि निर्धारण अधिकारी, उस आय से भिन्न, जिसमें ऐसे विषय अंतर्वलित हैं जो किसी अपील, निर्देश या पुनरीक्षण की विषयवस्तु है, ऐसी आय का, जो कर से प्रभार्य है और निर्धारण से छूट गई है, निर्धारण या पुन: निर्धारण कर सकेगा ।

स्पष्टीकरण 1– निर्धारण अधिकारी के समक्ष लेखा बहियों या अन्य साक्ष्य का पेश किया जाना, जिससे निर्धारण अधिकारी द्वारा सम्यक् तत्परता से तात्विक साक्ष्य का पता लगाया जा सकता था, पूर्वगामी परंतुक के अर्थ में अनिवार्यत: प्रकटीकरण नहीं होगा ।

स्पष्टीकरण 2– इस धारा के प्रयोजनों के लिए निम्नलिखित को भी ऐसे मामले समझा जाएगा जिसमें कर से प्रभार्य आय निर्धारण से छूट गई है, अर्थात् :–

(क) जहां निर्धारिती ने आय की कोई विवरणी नहीं दी है यद्यपि उसकी कुछ आय या किसी अन्य व्यक्ति की कुल आय, जिसकी बाबत वह पूर्ववर्ष के दौरान इस अधिनियम के अधीन निर्धारणीय है, उस अधिकतम रकम से अधिक थी जो आय कर से प्रभार्य नहीं है ;

(ख) जहां निर्धारिती ने आय की विवरणी दी है, किंतु कोई निर्धारण नहीं किया गया है, और निर्धारण अधिकारी की जानकारी में आता है कि निर्धारिती ने आय कम बताई है, या विवरणी में अत्यधिक हानि, कटौती, मोक या राहत का दावा किया है;

(खक) जहां निर्धारिती किसी अंतरराष्ट्रीय संव्यवहार के

संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करने में असफल रहा है, जिसके लिए उससे धारा 92ड. के अधीन ऐसी अपेक्षा की गई थी;

(ग) जहां निर्धारण किया गया है, किंतु–

(i) कर से प्रभार्य आय अवनिर्धारित की गई है; या

(ii) ऐसी आय अत्यंत न्यून दर से निर्धारित की गई है; या

(iii) ऐसी आय इस अधिनियम के अधीन अत्यधिक राहत का विषय बना दी गई है; या

(iv) इस अधिनियम के अधीन अत्यधिक हानि या अवक्षयण मोक या कोई अन्य मोक संगणित किया गया है ।

(गक) जहां निर्धारिती द्वारा आय की कोई विवरणी नहीं दी गई है या उसके द्वारा आय की कोई विवरणी दी गई है और धारा 133ग की उपधारा (2) के अधीन विहित आय-कर प्राधिकारी से प्राप्त जानकारी या दस्तावेज के आधार पर निर्धारण अधिकारी द्वारा यह पाया जाता है कि निर्धारिती की आय कर से अप्रभार्य अधिकतम रकम से अधिक है, या, यथास्थिति, निर्धारिती न आय कम बताई है या विवरणी में अत्यधिक हानि, कटौती, मोक या राहत का दावा किया है ;

(घ) जहां ऐसे व्यक्ति के बारे में यह पाया जाता है कि उसके पास भारत के बाहर स्थित कोई आस्ति (जिसके अंतर्गत किसी अस्तित्व में वित्तीय हित भी है) है ।

स्पष्टीकरण 3– इस धारा के अधीन निर्धारण या पुनर्निर्धारण के प्रयोजनार्थ, निर्धारण अधिकारी, ऐसे किसी पुरोधरण की बाबत आय का, जो निर्धारण से छूट गई है, और ऐसा पुरोधरण इस धारा के अधीन कार्यवाहियों के अनुक्रम में बाद में उसकी जानकारी में आया है, इस बात के होते हुए भी, निर्धारण या पुनर्निर्धारण कर सकेगा कि ऐसे पुरोधरण के

कारणों को धारा 148 की उपधारा (2) के अधीन अभिलिखित कारणों में सम्मिलित नहीं किया गया है ।

स्पष्टीकरण 4– शंकाओं को दूर करने के लिए यह स्पष्ट किया जाता है कि वित्त अधिनियम, 2012 द्वारा यथासंशोधित इस धारा के उपबंध, 1 अप्रैल, 2012 को या उससे पूर्व आरंभ होने वाले किसी निर्धारण वर्ष के लिए भी लागू होंगे ।

जहां आय निर्धारण से छूट गई है, वहां सूचना का जारी किया जाना

148. (1) धारा 147 के अधीन निर्धारण, पुन: निर्धारण या पुन: संगणना करने के पूर्व, निर्धारण अधिकारी निर्धारिती पर उससे यह अपेक्षा करने वाली सूचना तामील करेगा कि वह ऐसी अवधि के भीतर जो सूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, सुसंगत निर्धारण वर्ष के तत्स्थानी पूर्ववर्ष के दौरान अपनी आय की या किसी अन्य व्यक्ति की आय की, जिसकी बाबत वह इस अधिनियम के अधीन निर्धारणीय है, विहित प्ररूप में और विहित रीति से सत्यापित तथा ऐसी अन्य विशिष्टियों को जो विहित की जाएं, उल्लिखित करते हुए एक विवरण दे और इस अधिनियम के उपबंध, जहां तक हो सके तद्नुसार उसी प्रकार लागू होंगे मानों वह विवरणी ऐसी विवरण हो, जो धारा 139 के अधीन दी जानी अपेक्षित है:

परंतु यह कि ऐसे किसी मामले में,–

(क) जहां कि इस धारा के अधीन तामील की गई किसी सूचना के उत्तर में 1 अक्तूबर, 1991 को प्रारंभ होने वाली और 30 सितंबर, 2005 को समाप्त होने वाली अवधि के दौरान कोई विवरणी दी गई है ; और

(ख) तत्पश्चात् धारा 143 की उपधारा (2) के अधीन किसी सूचना की, धारा 143 की उपधारा (2) के परंतुक में, जैसे कि वह वित्त अधिनियम, 2002 (2002 का 20) द्वारा उक्त उपधारा का संशोधन किए जाने से ठीक पूर्व विद्यमान था, विनिर्दिष्ट बारह मास के अवसान के पश्चात् किंतु धारा 153 की उपधारा (2) में यथाविनिर्दिष्ट निर्धारण, पुनर्निर्धारण

या पुन:संगणना करने की समय-सीमा के अवसान से पूर्व, तामील की गई है, वहां इस खंड में निर्दिष्ट प्रत्येक ऐसी सूचना को विधिमान्य सूचना समझा जाएगा :

परंतु यह और कि किसी मामले में–

(क) जहां कि इस धारा के अधीन तामील की गई किसी सूचना के उत्तर में 1 अक्तूबर, 1991 को प्रारंभ होने वाली और 30 सितंबर, 2005 को समाप्त होने वाली अवधि के दौरान कोई विवरणी दी गई है, और

(ख) तत्पश्चात् धारा 143 की उपधारा (2) के खंड (ii) के अधीन किसी सूचना की धारा 143 की उपधारा (2) के खंड (ii) के परंतुक में विनिर्दिष्ट बारह मास के अवसान के पश्चात् किंतु धारा 153 की उपधारा (2) में यथा विनिर्दिष्ट निर्धारण, पुनर्निर्धारण या पुन:संगणना करने की समय-सीमा के अवसान से पूर्व, तामील की गई है, वहां इस खंड में निर्दिष्ट प्रत्येक ऐसी सूचना को विधिमान्य सूचना समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण– शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि पहले परंतुक या दूसरे परंतुक में की कोई भी बात, इस धारा के अधीन तामील की गई किसी सूचना के उत्तर में 1 अक्तूबर, 2005 को या उसके पश्चात् दी गई विवरण को लागू नहीं होगी ।

(2) निर्धारण अधिकारी इस धारा के अधीन कोई सूचना जारी करने से पूर्व ऐसा करने के अपने कारणों को लेखबद्ध करेगा ।

सूचना के लिए समय-सीमा

149. (1) धारा 148 के अधीन कोई सूचना सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए तब तक जारी नहीं की जाएगी यदि–

(क) सुसंगत निर्धारण वर्ष के अंत से चार वर्ष बीत चुके हैं, जब तक कि मामला खंड (ख) या खंड (ग) के अंतर्गत न आता हो,

(ख) सुसंगत निर्धारण वर्ष के अंत से चार वर्ष किंतु अधिक से अधिक छह वर्ष बीत चुके हैं, जब तक कि कर से प्रभार्य आय, जो निर्धारण से छूट गई थी, उस वर्ष के लिए एक लाख रुपए या अधिक की कोटि में नहीं आती या आनी संभाव्य नहीं है ।

(ग) यदि सुसंगत निर्धारण वर्ष के अंत से चार वर्ष, किंतु सोलह वर्ष से अनधिक वर्ष व्यपगत हो चुके हों तो जब तक कि भारत के बारह स्थित किसी आस्ति के संबंध में (जिसके अंतर्गत किसी अस्तित्व में वित्तीय हित भी है) कर से प्रभार्य ऐसी आय, निर्धारण से छूट नहीं गई है ।

स्पष्टीकरण– इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए कर से प्रभार्य उस आय का अवधारण करने के लिए जो निर्धारण से छूट गई है, धारा 147 के स्पष्टीकरण 2 के उपबंध वैसे ही लागू होंगे जैसे वे उस धारा के प्रयोजनों के लिए लागू होते हैं ।

(2) उपधारा (1) के उपबंध, सूचना के जारी किए जाने के संबंध में धारा 151 के उपबंधों के अधीन होंगे ।

(3) यदि वह व्यक्ति, जिस पर धारा 148 के अधीन सूचना की तामील की जानी है, ऐसा व्यक्ति है जो धारा 163 के अधीन अनिवासी का अभिकर्ता माना जाता है, और सूचना के अनुसरण में किया जाने वाला निर्धारण, पुन: निर्धारण या पुन: संगणना ऐसे अनिवासी के अभिकर्ता के रूप में उस पर की जानी है तो सूचना, सुसंगत निर्धारण वर्ष के अंत से (छह) वर्ष की कालावधि की समाप्ति के पश्चात् जारी नहीं की जाएगी ।

स्पष्टीकरण– शंकाओं को दूर करने के लिए यह स्पष्ट किया जाता है कि वित्त अधिनियम, 2012 द्वारा यथासंशोधित उपधारा (1) और उपधारा (3) के उपबंध, 1 अप्रैल, 2012 को या उसके पूर्व आरंभ होने वाले किसी निर्धारण वर्ष के लिए भी लागू होंगे ।

सूचना जारी करने की मंजूरी

151. (1) सुसंगत निर्धारण वर्ष के अंत से चार वर्ष की अवधि

की समाप्ति के पश्चात् किसी निर्धारण अधिकारी द्वारा धारा 148 के अधीन कोई सूचना जारी नहीं की जाएगी, जब तक कि प्रधान मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त का, निर्धारण अधिकारी द्वारा लेखबद्ध किए गए कारणों के आधार पर यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसी सूचना जारी किए जाने के लिए वह उपयुक्त मामला है ।

(2) उपधारा (1) के अंतर्गत आने वाले किसी मामले से भिन्न मामले में, किसी ऐसे निर्धारण अधिकारी द्वारा लेखबद्ध किए गए कारणों के आधार पर यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसी सूचना जारी किए जाने के लिए वह उपयुक्त मामला है ।

(3) उपधारा (1) और उपधारा (2) के प्रयोजनों के लिए, यथास्थिति, प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त या संयुक्त आयुक्त का, धारा 148 के अधीन सूचना जारी करने के लिए मामले की उपयुक्तता के बारे में निर्धारण अधिकारी द्वारा लेखबद्ध किए गए कारणों के आधार पर समाधान हो जाने के पश्चात्, स्वयं ऐसी सूचना जारी करना आवश्यक नहीं है ।"

3.1 शिथिलीकरण अधिनियम, 2020 की धारा 3 के अधीन निहित शक्ति के अनुसरण में, केंद्रीय सरकार ने अन्य बातों के साथ-साथ आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 148 के अधीन पुनर्निर्धारण सूचनाएं जारी करने के लिए धारा 149 के अधीन विहित समय-सीमा का विस्तार करने के लिए निम्नलिखित अधिसूचनाएं जारी की थीं :

अधिसूचना की तारीख	अधिनियम की धारा 148 के अधीन सूचना जारी किए जाने के लिए मूल परिसीमा	विस्तारित परिसीमा
31.03.2020	20.03.2020 से 29.06.2020	30.06.2020
24.06.2020	20.03.2020 से	31.03.2021

	31.12.2020	
31.03.2021	31.03.2021	30.04.2021
27.04.2021	30.04.2021	30.06.2021

शिथिलीकरण अधिनियम, 2020 की धारा 3 के अधीन जारी की गई तारीख 31 मार्च, 2021 और 27 अप्रैल, 2021 की अधिसूचनाओं के स्पष्टीकरण में यह भी अनुबंधित था कि वे उपबंध, जैसे कि वे वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधन के पूर्व विद्यमान थे, तद्धीन आरंभ की गई पुनर्निर्धारण कार्यवाहियों को लागू होंगे ।

3.2 संसद् ने वित्त अधिनियम, 2021 जो तारीख 28 मार्च, 2021 को पारित किया गया था, द्वारा पुनर्निर्धारण कार्यवाहियों को शासित करने वाली आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 147 से 151 में सुधारात्मक परिवर्तन पुर:स्थापित किए थे । वित्त अधिनियम, 2021 में पारित तारीख 1 अप्रैल, 2021 से लागू प्रतिस्थापित धाराएं 147 से 149 और धारा 151 निम्नलिखित हैं :–

निर्धारण से छूट गई आय

"147. यदि, किसी निर्धारिती की दशा में, किसी निर्धारण वर्ष के लिए कर से प्रभार्य कोई आय निर्धारण से छूट गई है, तो निर्धारण अधिकारी, धारा 148 से धारा 153 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, ऐसे निर्धारण वर्ष (जिसे इस धारा और निर्दिष्ट धारा 148 से धारा 153 में इसके पश्चात् सुसंगत निर्धारण वर्ष कहा गया है) के लिए ऐसी आय का निर्धारण या पुन: निर्धारण कर सकेगा या हानि या अवक्षयण मोक या किसी अन्य मोक या कटौती की पुन: गणना कर सकेगा ।

स्पष्टीकरण– इस धारा के अधीन निर्धारण या पुन: निर्धारण के प्रयोजनों के लिए, निर्धारण अधिकारी, किसी ऐसे मुद्दे के संबंध में आय का, जो निर्धारण से छूट गई है और ऐसा मुद्दा इस धारा के अधीन कार्यवाहियों के दौरान तत्पश्चात् उसके ध्यान में आता है, तो इस बात को ध्यान में न रखते हुए कि धारा 148क के उपबंधों

का अनुपालन नहीं किया गया है, निर्धारण या पुनर्निर्धारण या पुन:संगणना कर सकेगा । "

जहां आय निर्धारण से छूट गई है, वहां सूचना का जारी किया जाना

"148. धारा 147 के अधीन निर्धारण, पुनर्निर्धारण या पुन:संगणना करने से पूर्व और धारा 148क के उपबंधों के अधीन रहते हुए, निर्धारण अधिकारी धारा 148क के खंड (घ) के अधीन उससे ऐसी अवधि के भीतर, जो ऐसी सूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, पारित आदेश की प्रति के साथ एक सूचना की तामील निर्धारिती को करेगा, यदि अपेक्षित हो, निर्धारिती पर तामील करेगा जिसमें उसे यह अपेक्षा की गई हो कि वह अपनी आय की विवरणी या किसी अन्य व्यक्ति की आय की विवरणी, जिसके संबंध में वह सुसंगत निर्धारण वर्ष के तत्स्थानी पूर्ववर्ष के दौरान इस अधिनियम के अधीन निर्धारणीय है, विहित प्ररूप में और विहित रीति से सत्यापित तथा उसमें ऐसी अन्य विशिष्टियों को, जो विहित की जाएं, उल्लिखित करते हुए प्रस्तुत करे ; और इस अधिनियम के उपबंध, यथाशक्य तद्नुसार लागू होंगे मानो ऐसी विवरणी धारा 139 के अधीन प्रस्तुत की जानी अपेक्षित थी :

परंतु इस धारा के अधीन कोई सूचना तब तक जारी नहीं की जाएगी जब तक निर्धारण अधिकारी के पास ऐसी सूचना न हो, जिससे यह प्रतीत होता हो कि किसी निर्धारिती की दशा में कर से प्रभार्य आय सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए छूट गई है और निर्धारण अधिकारी ने विनिर्दिष्ट प्राधिकारी से ऐसी सूचना जारी करने का पूर्व अनुमोदन अभिप्राप्त कर लिया गया है ।

स्पष्टीकरण 1– इस धारा और धारा 148क के प्रयोजनों के लिए, निर्धारण अधिकारी के पास सूचना, जिससे यह प्रतीत होता हो कि कर से प्रभार्य आय निर्धारण से छूट गई है, से –

(i) समय-समय पर बोर्ड द्वारा विरचित जोखिम प्रबंधन रणनीति के अनुसार सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती

की दशा में चिह्नांकित कोई सूचना अभिप्रेत है ;

(ii) भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक द्वारा इस प्रभाव का किया गया कोई अंतिम आक्षेप कि सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती की दशा में निर्धारण इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार नहीं किया गया है, अभिप्रेत है ।

स्पष्टीकरण 2– इस धारा के प्रयोजनों के लिए, जहां,–

(i) निर्धारिती की दशा में, धारा 132 के अधीन कोई तालशी आरंभ की गई है या धारा 132क के अधीन लेखा बहियों, अन्य दस्तावेजों या किन्हीं आस्तियों की, 1 अप्रैल, 2021 को या उसके पश्चात् अपेक्षा की गई है ; या

(ii) निर्धारिती की दशा में, 1 अप्रैल, 2021 को या उसके पश्चात् धारा 133क की उपधारा (2क) या उपधारा (5) से भिन्न, इस धारा के अधीन कोई सर्वेक्षण किया गया है ; या

(iii) प्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्वानुमोदन से निर्धारण अधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि कोई धन, सोना-चांदी की दशा में 1 अप्रैल, 2021 को या उसके पश्चात् अभिग्रहण किया गया है या धारा 132 या धारा 132क के अधीन अपेक्षा की गई है, निर्धारिती से संबंधित है ; या

(iv) प्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्वानुमोदन से निर्धारण अधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि किसी अन्य व्यक्ति की दशा में 1 अप्रैल, 2021 को या उसके पश्चात् धारा 132 के अधीन या धारा 132क के अधीन या धारा 132क के अधीन अभिग्रहण या अपेक्षा की गई लेखा बहियां या दस्तावेज, उनमें अंतर्विष्ट किसी सूचना का है, जो निर्धारिती से संबंधित है,

इस बारे में यह समझा जाएगा कि निर्धारण अधिकारी के पास सूचना है, जिससे यह प्रतीत होता है कि निर्धारिती की दशा में उस पूर्व वर्ष, जिसमें तलाशी आरंभ की गई है या लेखा बहियां, अन्य दस्तावेज या किन्हीं आस्तियों की अपेक्षा

की गई या सर्वेक्षण संचालित किया गया है, या धन, सोना-चांदी, आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तु या चीज या लेखा बहियां या दस्तावेजों का किसी अन्य व्यक्ति की दशा में अभिग्रहण किया गया है या अपेक्षा की गई है, से सुसंगत पूर्ववर्ती निर्धारण वर्ष से ठीक पूर्व तीन निर्धारण वर्षों के लिए कर से प्रभार्य आय निर्धारण से रह गई है ।

स्पष्टीकरण 3– इस धारा के प्रयोजनों के लिए, विनिर्दिष्ट प्राधिकारी से धारा 151 के अनुसार विनिर्दिष्ट प्राधिकारी अभिप्रेत है ।"

धारा 148 के अधीन सूचना जारी किए जाने से पूर्व जांच करना, अवसर प्रदान करना

"148क. निर्धारण अधिकारी द्वारा 148 के अधीन कोई सूचना जारी करने से पूर्व,–

(क) ऐसी सूचना जिससे यह प्रतीत हो कि कर से प्रभार्य आय, निर्धारण से छूट गई है, के संबंध में विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्वानुमोदन से कोई जांच, यदि अपेक्षित हो, करेगा ;

(ख) विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्वानुमोदन से, निर्धारिती को कारण बताओ सूचना तामील करके, उसे ऐसे समय के भीतर, जो सूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए और जो सात दिन से कम का नहीं होगा किंतु ऐसी तारीख से, जिसको ऐसी सूचना जारी की जाती है, तीस दिन से अधिक का नहीं होगा या ऐसा समय, जो इस निमित्त किसी आवेदन के आधार पर उसके द्वारा बढ़ाया जाए, कि धारा 148 के अधीन जानकारी के आधार पर सूचना क्यों न जारी की जाए जिससे यह प्रतीत होता हो कि कर से प्रभार्य आय सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए उसके मामले में निर्धारण से छूट गई है, सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा और जिसका परिणाम खंड (क) के अनुसार की गई जांच, यदि कोई हो, है ;

(ग) खंड (ख) में निर्दिष्ट कारण बताओ सूचना के उत्तर में प्रस्तुत निर्धारिती के उत्तर, यदि कोई हो, पर विचार करेगा ।

(घ) अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, जिसके अंतर्गत निर्धारिती का उत्तर भी है, यह विनिश्चय करेगा कि क्या उस मास के अंत से, जिसमें खंड (ग) में निर्दिष्ट उत्तर उसके द्वारा प्राप्त किया जाता है या जहां उस मास, जिसमें खंड (ख) के अनुसार उत्तर प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात समय या बढ़ाया गया समय समाप्त हो जाता है, के अंत से एक मास के भीतर ऐसा उत्तर प्राप्त नहीं होता है, एक मास के भीतर विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्वानुमोदन से आदेश पारित करके धारा 148 के अधीन सूचना जारी करने के लिए यह उपयुक्त मामला है या नहीं :

परंतु इस धारा के उपबंध उस मामले में लागू नहीं होगे, जहां–

(क) निर्धारिती की दशा में, धारा 132 के अधीन कोई तलाशी आरंभ की गई है या धारा 132क के अधीन लेखा बहियों, अन्य दस्तावेजों या किन्हीं आस्तियों की 1 अप्रैल, 2021 को या उससे पूर्व अपेक्षा की गई ; या

(ख) प्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्वानुमोदन से निर्धारण अधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि कोई धन, सोना-चांदी, आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तु या चीज, जिसका किसी अन्य व्यक्ति की दशा में 1 अप्रैल, 2021 को या उसके पश्चात् धारा 132 के अधीन तलाशी में अभिग्रहण किया गया है या धारा 132क के अधीन अपेक्षा की गई है, निर्धारिती से संबंधित है ; या

(ग) प्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्वानुमोदन से निर्धारण अधिकारी का यह समाधान हो गया है कि कोई लेखा बही या दस्तावेज, जिसका किसी अन्य व्यक्ति की दशा में 1

अप्रैल, 2021 को या उसके पश्चात् धारा 132क के अधीन अपेक्षा की गई है, उसमें अंतर्विष्ट ऐसी सूचना से संबंधित है, जिनका संबंध निर्धारिती से है ।

स्पष्टीकरण– इस धारा के प्रयोजनों के लिए, विनिर्दिष्ट प्राधिकारी से धारा 151 में निर्दिष्ट विनिर्दिष्ट प्राधिकारी अभिप्रेत है ।"

सूचना के लिए समय-सीमा

"149 (1) धारा 148 के अधीन कोई सूचना सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए तब तक जारी नहीं की जाएगी, जब तक, –

(क) यदि सुसंगत निर्धारण वर्ष के अंत से तीन वर्ष व्यपगत हो चुके हैं, तो जब तक वह मामला खंड (ख) के अधीन नहीं आता है ;

(ख) यदि सुसंगत निर्धारण वर्ष के अंत से तीन वर्ष किंतु दस से अनधिक वर्ष व्यपगत हो चुके हैं, तो जब तक निर्धारण अधिकारी के कब्जे में ऐसी लेखा बहियां या अन्य दस्तावेज या ऐसा साक्ष्य न हो, जो यह प्रकट करता हो कि कर से प्रभार्य ऐसी आय, जिसे आस्ति के रूप में व्यपदिष्ट किया गया है जो निर्धारण से छूट गई है, उस वर्ष के लिए पचास लाख रुपए या उससे अधिक है या होनी संभाव्य है :

परंतु धारा 148 के अधीन 1 अप्रैल, 2021 को या उससे पूर्व आरंभ होने वाले सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए किसी मामले में किसी भी समय कोई सूचना जारी नहीं की जाएगी, यदि ऐसी सूचना इस धारा की उपधारा (1) के खंड (ख) के उपबंधों, जैसे कि वे वित्त अधिनियम, 2021 के आरंभ से ठीक पूर्व विद्यमान थे, के अधीन विनिर्दिष्ट समय-सीमा से परे होने के कारण उस समय जारी नहीं की जा सकती थी :

परंतु यह और कि इस उपधारा के उपबंध उस दशा में लागू नहीं होंगे 31 मार्च, 2021 को या उससे पूर्व जहां धारा 153क या धारा 153क के साथ पठित धारा 153ग के अधीन कोई सूचना

धारा 132 के अधीन आरंभ की गई किसी तलाशी के संबंध में या धारा 132क के अधीन लेखा बहियों, अन्य दस्तावेजों या किन्हीं आस्तियों की अपेक्षा के संबंध में जारी की जानी अपेक्षित है :

परंतु यह भी कि इस धारा के अनुसार परिसीमा की अवधि की संगणना करने के प्रयोजनों के लिए धारा 148क के खंड (ख) के अधीन जारी कारण बताओ सूचना के अनुसार निर्धारिती को दिया गया समय या उसे अनुज्ञात किया गया कोई विस्तारित समय या वह अवधि, जिसके दौरान धारा 148क के अधीन किसी कार्यवाही को किसी न्यायालय के किसी आदेश या व्यादेश द्वारा रोक दिया जाता है, अपर्जित किया जाएगा :

परंतु यह भी कि जहां ठीक पूर्ववर्ती परंतुक में निर्दिष्ट अवधि के अपवर्जन के ठीक पश्चात्, निर्धारण अधिकारी को धारा 148क के खंड (घ) के अधीन कोई आदेश पारित करने के लिए उपलब्ध परिसीमा की अवधि सात दिन से कम है तो ऐसी शेष अवधि को सात दिन तक विस्तारित किया जाएगा और इस उपधारा के अधीन परिसीमा की अवधि को तद्नुसार विस्तारित किया गया समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के खंड (ख) के प्रयोजनों के लिए, 'आस्ति' के अंतर्गत स्थावर संपत्ति, जो भूमि या भवन या दोनों, शेयर और प्रतिभूतियां, ऋण और अग्रिम, बैंक खाते में जमा भी है, होंगे ।

(2) सूचना जारी करने के बारे में उपधारा (1) के उपबंध धारा 151 के उपबंधों के अध्यधीन होंगे ।"

सूचना जारी किए जाने के लिए मंजूरी

"151. धारा 148 और धारा 148क के प्रयोजनों के लिए विनिर्दिष्ट प्राधिकारी –

(i) प्रधान आयुक्त या प्रधान निदेशक या आयुक्त या निदेशक होगा, यदि सुसंगत निर्धारण वर्ष के अंत से तीन वर्ष

या तीन वर्ष से कम व्यपगत हो गए हैं ;

(ii) प्रधान मुख्य आयुक्त या प्रधान महानिदेशक या जहां कोई प्रधान मुख्य आयुक्त या प्रधान महानिदेशक नहीं है, वहां मुख्य आयुक्त या महानिदेशक होगा, यदि सुसंगत निर्धारण वर्ष के अंत से तीन वर्ष से अधिक व्यपगत हो गए हैं ।"

3.3 आय-कर अधिनियम की धारा 151क की उपधारा (1) के आरंभिक भाग में "धारा 148 के अधीन सूचना जारी करना" शब्दों और अंकों के पश्चात् "या जांच संचालित करना या कारण बताओ सूचना जारी करना या धारा 148क के अधीन आदेश पारित करना" शब्द, अंक और अक्षर अंत:स्थापित किए गए हैं ।

4. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर के अनुसार, वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा आय-कर अधिनियम, 1961 की प्रतिस्थापित धाराएं 147 से 151 तारीख 1 अप्रैल, 2021 से प्रवृत्त होने के बावजूद राजस्व विभाग ने इसकी तत्कालीन धारा 148 से 151 के अधीन तारीख 31 मार्च, 2021 और 27 अप्रैल, 2021 की अधिसूचनाओं में के स्पष्टीकरणों का अवलंब लेते हुए संबंधित निर्धारितियों को लगभग 90,000 पुनर्निर्धारण सूचनाएं जारी की थीं । उक्त पुनर्निर्धारण सूचनाएं विभिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष रिट याचिकाओं की विषयवस्तु थीं । संबंधित उच्च न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया कि आय-कर अधिनियम, 1961 की तत्कालीन धारा 148 से 151 के अधीन जारी की गई सभी संबंधित पुनर्निर्धारण सूचनाएं विधि की दृष्टि में दूषित हैं क्योंकि तारीख 1 अप्रैल, 2021 के पश्चात् जारी की गई पुनर्निर्धारण सूचनाएं वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित आय-कर अधिनियम, 1961 की प्रतिस्थापित धारा 147 से 151 द्वारा शासित होती हैं । परिणामत:, संबंधित उच्च न्यायालयों ने आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 148 के अधीन जारी की गई सभी पुनर्निर्धारण सूचनाओं को, जहां कहीं उन्हें चुनौती दी गई थी, अपास्त कर दिया । इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया सामान्य निर्णय और आदेश वर्तमान अपीलों की विषयवस्तु है । तथापि, दिल्ली उच्च न्यायालय ने तारीख 15 दिसंबर, 2021 के अपने सामान्य निर्णय और आदेश में संबंधित पुनर्निर्धारण

सूचनाओं को अभिखंडित करते हुए यह भी मत व्यक्त किया कि यदि विधि राजस्व विभाग को मामले में आगामी कदम उठाने के लिए अनुज्ञात करती है तो वे ऐसा करने के लिए स्वतंत्र होंगे ।

5. हमने राजस्व विभाग की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अपर महा-सालिसिटर श्री एन. वेंकटरमन और संबंधित निर्धारितियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री सी. ए. सुंदरम और श्री एस. गणेश तथा अन्य विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

6. यह विवादग्रस्त नहीं किया जा सकता है कि वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा आय-कर अधिनियम की धारा 147 से 151 का प्रतिस्थापन करके पुनर्निर्धारण कार्यवाहियों के लिए प्रक्रिया को शासित करने के लिए मूलभूत और सुधारात्मक परिवर्तन किए गए हैं । आय-कर अधिनियम की संशोधित धारा 147 से 149 और धारा 151 में पुनर्निर्धारण कार्यवाहियों के आरंभ को शासित करने वाली प्रक्रिया विहित की गई हैं । तथापि, कई कारणों से, इससे अनेक मुकदमेबाजी उत्पन्न हुईं और (निर्धारण) पुन: खोलने को, अन्य बातों के साथ-साथ, इन आधारों पर चुनौती दी गई जैसे (1) "विश्वास करने का कोई विधिमान्य कारण नहीं है ; (2) निर्धारण अधिकारी के पास कोई ठोस/विश्वसनीय सामग्री/जानकारी नहीं है जिससे यह विश्वास पैदा हो कि आय निर्धारण से बच गई है; (3) सूचना जारी करने से पूर्व निर्धारण अधिकारी द्वारा कोई जांच नहीं की गई है, पुन: खोलना निर्धारण अधिकारी की राय में परिवर्तन पर आधारित है, और (4) अंतिमत: **जीकेएन ड्राइवशाफ्ट्स (इंडिया) लि.** बनाम **आय-कर अधिकारी और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई आज्ञापक प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया है ।

6.1 इसके अतिरिक्त, वित्त अधिनियम, 2021 से पूर्व अधिकतम छह वर्ष की अवधि तक और कुछ मामलों में छह वर्ष के परे भी निर्धारण को पुन: खोलना अनुज्ञेय था, जिसके कारण काफी समय तक अनिश्चितता बनी रही । इसलिए संसद् ने कर प्रशासन का सरलीकरण

---

[1] (2003) 1 एस. सी. सी. 72.

करने, अनुपालन को आसान बनाने और मुकदमेबाजी को कम करने के लिए आय-कर अधिनियम में संशोधन करना उचित समझा । अत: उक्त उद्देश्य को प्राप्त करने की दृष्टि से वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा धारा 147 से 149 और धारा 151 को प्रतिस्थापित किया गया ।

6.2 वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा आय-कर अधिनियम के प्रतिस्थापित उपबंधों के अधीन आय-कर अधिनियम की धारा 148क के अधीन विहित प्रक्रिया का पालन किए बिना कोई सूचना जारी नहीं की जा सकती है । आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन दी गई सूचना के साथ निर्धारण अधिकारी के लिए आय-कर अधिनियम की धारा 148क के अधीन पारित आदेश को तामील करना आवश्यक है । आय-कर अधिनियम की धारा 148क एक नया उपबंध है जो एक पूर्ववर्ती शर्त की प्रकृति का है । इस प्रकार, आय-कर अधिनियम की धारा 148क के पुर:स्थापन को कर प्रशासन का सरलीकरण करने, अनुपालन को आसान बनाने और मुकदमेबाजी को कम करने के अंतिम उद्देश्य को प्राप्त करने के लक्ष्य की दिशा में एक क्रांतिकारी बदलाव कहा जा सकता है ।

6.3 किंतु वित्त अधिनियम, 2021 से पूर्व, किसी निर्धारण को पुन: खोलते समय पुन: खोलने के कारणों को देने की प्रक्रिया और निर्धारिती को अवसर देने तथा **जीकेएन ड्राइवशाफ्ट्स (इंडिया) लि.** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार इसके उद्देश्यों पर विनिश्चय का अनुसरण किया जाना अपेक्षित था ।

6.4 तथापि, धारा 148क के द्वारा प्रक्रिया को अब सुव्यवस्थित और सरल बनाया गया है । इसमें यह उपबंध किया गया है कि धारा 148 के अधीन कोई भी सूचना जारी करने से पूर्व निर्धारण अधिकारी (i) उस जानकारी के संबंध में जिससे लगता है कि कर से प्रभार्य आय निर्धारण से छूट गई है, विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के अनुमोदन से कोई जांच, यदि अपेक्षित हो, करेगा ; (ii) निर्धारिती को विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन से सुनवाई का अवसर देगा ; (iii) खंड (ख) में निर्दिष्ट कारण बताओ सूचना के जवाब में प्रस्तुत किए गए निर्धारिती के उत्तर, यदि कोई हो, पर विचार करेगा ; (iv) निर्धारिती के उत्तर सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह अभिनिश्चय करेगा कि क्या यह

आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन सूचना जारी करने के लिए एक उपयुक्त मामला है या नहीं ; और (v) निर्धारण अधिकारी नियत अवधि के भीतर एक विनिर्दिष्ट आदेश पारित करेगा ।

6.5 अत: आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन सूचना जारी किए जाने से पूर्व सभी सुरक्षापायों का उपबंध किया गया है । प्रत्येक प्रक्रम पर, यहां तक कि धारा 148क(क) के अनुसार जांच करने के लिए भी, विनिर्दिष्ट प्राधिकारी का अनुमोदन आवश्यक है । केवल उस मामले में जहां निर्धारण अधिकारी की यह राय है कि धारा 148क(ख) के अधीन कोई सूचना जारी किए जाने से पूर्व और निर्धारिती को एक अवसर दिया जाना चाहिए, कोई जांच करना आवश्यक है तो निर्धारण अधिकारी ऐसा कर सकेगा और कोई जांच कर सकेगा । इस प्रकार, यदि निर्धारण अधिकारी की यह राय है कि ऐसी जानकारी के संबंध में जिससे यह लगता है कि कर से प्रभार्य आय निर्धारण से छूट गई है, कोई जांच करना आवश्यक है, तो निर्धारण अधिकारी ऐसा कर सकता है, तथापि, विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन से ।

6.6 प्रतिस्थापित धारा 149 आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन सूचना जारी करने के लिए समय-सीमा को शासित करने वाला उपबंध है । आय-कर अधिनियम की प्रतिस्थापित धारा 149 ने ऐसी कोई सूचना जारी करने के लिए अनुज्ञेय समय-सीमा को कम करके तीन वर्ष कर दिया है और केवल आपवादिक मामलों में यह दस वर्ष है । इसमें और अधिक अतिरिक्त रक्षोपायों का भी उपबंध किया गया है जो पहले वित्त अधिनियम, 2021 से पूर्व की व्यवस्था में नहीं थे ।

7. इस प्रकार, वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित नए उपबंध उपचारात्मक और हितकारी प्रकृति के होने के कारण और निर्धारिती के अधिकारों और हित की भी संरक्षा करने के लिए एक विनिर्दिष्ट उद्देश्य और लक्ष्य के साथ प्रतिस्थापित किए गए हैं तथा ये लोकहित में होने के कारण संबंधित उच्च न्यायालयों ने ठीक ही यह अभिनिर्धारित किया है कि नए उपबंधों का फायदा विगत निर्धारण वर्षों से संबंधित कार्यवाहियों के संबंध में भी उपलब्ध कराया जाएगा, बशर्ते धारा 148 के अधीन सूचना तारीख 1 अप्रैल, 2021 को या इसके

पश्चात् जारी की गई है । हम विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा ऐसा अभिनिर्धारित करने में अपनाए गए दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत हैं ।

8. तथापि, इसके साथ-साथ कई उच्च न्यायालयों के निर्णयों में यह निष्कर्ष निकाला गया कि कतई कोई पुनर्निर्धारण कार्यवाहियां नहीं की जाएंगी, भले ही वे वित्त अधिनियम, 2021 के अधीन और आय-कर अधिनियम की प्रतिस्थापित धारा 147 से 151 के अनुसार अनुज्ञेय हों । राजस्व विभाग को उपचार विहिन नहीं किया जा सकता है और पुनर्निर्धारण कार्यवाहियों के उद्देश्य और प्रयोजन को विफल नहीं किया जा सकता है । यह सही है कि एक सद्भाविक भूल और विभिन्न अधिसूचनाओं द्वारा बाद में समय के विस्तार को देखते हुए राजस्व विभाग ने तारीख 1 अप्रैल, 2021 से संशोधन के प्रवर्तित होने के पश्चात् धारा 148 के अधीन आक्षेपित सूचनाएं जारी की थीं । हमारे मत में, ये सूचनाएं असंशोधित अधिनियम के अधीन जारी नहीं की जानी चाहिए थीं और वित्त अधिनियम, 2021 के अनुसार आय-कर अधिनियम की धारा 147 से 151 के प्रतिस्थापित उपबंधों के अधीन जारी की जानी चाहिए थीं । संशोधनों को असलियत में लागू किया गया प्रतीत नहीं होता है क्योंकि राजस्व विभाग के अधिकारियों का यह सद्भाविक विश्वास रहा होगा कि संशोधनों को अभी तक प्रवर्तित नहीं किया गया होगा । इसलिए हमारी यह राय है कि इस संबंध में कुछ गुंजाइश दिखाई जानी चाहिए जो उच्च न्यायालय ऐसा कर सकते थे । अत: उच्च न्यायालयों को आय-कर अधिनियम के असंशोधित उपबंध के अधीन जारी की गई पुनर्निर्धारण सूचनाओं को अभिखंडित और अपास्त करने की बजाए असंशोधित अधिनियम/आय-कर अधिनियम के असंशोधित उपबंध को धारा 148क के नए उपबंध के अनुसार आय-कर अधिनियम की धारा 148 के अधीन जारी किया गया समझा जाना चाहिए था और राजस्व विभाग को वित्त अधिनियम, 2021 के अनुसार आय-कर अधिनियम की धारा 147 से 151 के प्रतिस्थापित उपबंधों के अनुसार पुनर्निर्धारण कार्यवाहियों में सभी प्रक्रियात्मक अपेक्षाओं का पालन करने और प्रतिरक्षाओं, जो निर्धारिती को आय-कर अधिनियम की धारा 147 से 151 के प्रतिस्थापित उपबंधों के अधीन उपलब्ध हो सकती हैं और जो

वित्त अधिनियम, 2021 के अधीन और विधि में उपलब्ध हो सकती हैं, के अधीन रहते हुए अग्रसर होने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए था । अत: हम संबंधित उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किए गए निर्णयों और आदेशों का उपांतरण करने के लिए निम्नलिखित प्रस्तावित करते हैं :–

(i) संबंधित निर्धारितियों को धारा 148 के अधीन जारी की गई संबंधित आक्षेपित सूचनाओं को वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथा प्रतिस्थापित आय-कर अधिनियम की धारा 148क के अधीन जारी किया गया समझा जाएगा और कारण बताओ सूचनाओं को धारा 148क(ख) के निबंधनों के अनुसार समझा जाएगा । संबंधित निर्धारण अधिकारी आज से तीस दिन के भीतर निर्धारितियों को राजस्व विभाग द्वारा अवलंब ली गई जानकारी और सामग्री प्रदान करेंगे जिससे निर्धारिती उसके पश्चात् दो सप्ताह के भीतर सूचनाओं का उत्तर दे सकें ।

(ii) उन सूचनाओं के संबंध में, जो तारीख 1 अप्रैल, 2021 से आज तक असंशोधित अधिनियम की धारा 148 के अधीन जारी की गई हैं और इसमें उच्च न्यायालय द्वारा अभिखंडित की गई सूचनाएं भी सम्मिलित हैं, धारा 148क(क) के अधीन विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन से कोई जांच करने की अपेक्षा का एक बारगी उपाय के रूप में त्याग किया जाए ।

(iii) निर्धारण अधिकारी उसके पश्चात् धारा 148क(घ) के निबंधनों के अनुसार प्रत्येक संबंधित निर्धारिती के संबंध में धारा 148क(ख) के अधीन यथा अपेक्षित प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् एक आदेश पारित करेंगे ।

(iv) वे सभी प्रतिरक्षाएं, जो निर्धारिती को धारा 149 के अधीन उपलब्ध हो सकती हैं और/या वित्त अधिनियम, 2021 के अधीन और विधि में उपलब्ध हो सकती हैं और निर्धारण अधिकारी को वित्त अधिनियम, 2021 के अधीन जो भी अधिकार उपलब्ध हों, उन्हें खुला रखा जाए और/या उपलब्ध किया जाना जारी रखा जाएगा; और

(v) यह आदेश संबंधित उच्च न्यायालयों द्वारा आय-कर अधिनियम की

असंशोधित धारा 148 के अधीन जारी की गई किसी प्रकार की सूचनाओं को अभिखंडित करते हुए पारित किए गए संबंधित निर्णयों और आदेशों को इस बात को विचार में लाए बिना प्रतिस्थापित/उपांतरित करेगा कि उन्हें इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है या नहीं ।

9. राजस्व विभाग की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अपर महा-सालिसिटर और संबंधित निर्धारितियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ताओं/विद्वान् काउंसेलों के बीच पूर्वोक्त पहलुओं पर मोटे तौर पर एक सहमति है । हमारी भी यह राय है कि यदि पूर्वोक्त आदेश पारित किया जाता है, तो यह राजस्व विभाग तथा संबंधित निर्धारितियों के अधिकारों के बीच एक संतुलन बनाएगा क्योंकि लगभग 90,000 ऐसी सूचनाएं जारी करने में राजस्व विभाग के अधिकारियों के सद्भाविक विश्वास के कारण राजस्व विभाग को हानि न उठानी पड़े क्योंकि आखिरकार ये सरकारी खजाने की ही हानि होगी । अत: हमने वर्तमान आदेश इस न्यायालय के समक्ष और आगे अपीलें फाइल करने से बचने और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किए गए इसी प्रकार के निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध लगभग 9,000 अपीलों का इस न्यायालय पर भार डालने, जिनमें से कुछ का विवरण हमने इसमें ऊपर दिया है, की दृष्टि से पारित करना प्रस्तावित किया है । हमने पूर्वोक्त आदेश भारतीय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह अभिनिर्धारित करके पारित करना भी प्रस्तावित किया है कि वर्तमान आदेश न केवल इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णयों और आदेशों को शासित करेगा, अपितु देश भर के विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किए गए इस प्रकार के निर्णयों और आदेशों के संबंध में भी लागू किया जाएगा और इसलिए वर्तमान आदेश **पान इंडिया** पर लागू होगा ।

10. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से, वर्तमान अपीलें भागत: मंजूर की जाती हैं । इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा 2021 की रिट कर संख्या 524 में और अन्य संबद्ध कर अपीलों/याचिकाओं में पारित किए गए आक्षेपित सामान्य निर्णयों

और आदेशों को निम्न प्रकार से उपांतरित/प्रतिस्थापित किया जाता है :–

(i) संबंधित निर्धारितियों को धारा 148 के अधीन जारी की गई संबंधित आक्षेपित सूचनाओं को वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथा प्रतिस्थापित आय-कर अधिनियम की धारा 148क के अधीन जारी किया गया समझा जाएगा और कारण बताओ सूचनाओं को धारा 148क(ख) के निबंधनों के अनुसार समझा जाएगा । संबंधित निर्धारण अधिकारी आज से तीस दिन के भीतर निर्धारितियों को राजस्व विभाग द्वारा अवलंब ली गई जानकारी और सामग्री प्रदान करेंगे जिससे निर्धारिति उसके पश्चात् दो सप्ताह के भीतर सूचनाओं का उत्तर दे सकें ।

(ii) उन सूचनाओं के संबंध में, जो तारीख 1 अप्रैल, 2021 से आज तक असंशोधित अधिनियम की धारा 148 के अधीन जारी की गई हैं और इसमें उच्च न्यायालय द्वारा अभिखंडित की गई सूचनाएं भी सम्मिलित हैं, धारा 148क(क) के अधीन विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन से कोई जांच करने की अपेक्षा का एक बारगी उपाय के रूप में त्याग किया जाए ।

(iii) निर्धारण अधिकारी उसके पश्चात् धारा 148क(घ) के निबंधनों के अनुसार प्रत्येक संबंधित निर्धारिती के संबंध में धारा 148क(ख) के अधीन यथा अपेक्षित प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् एक आदेश पारित करेंगे ।

(iv) वे सभी प्रतिरक्षाएं, जो निर्धारिती को धारा 149 के अधीन उपलब्ध हो सकती हैं और/या वित्त अधिनियम, 2021 के अधीन और विधि में उपलब्ध हो सकती हैं और निर्धारण अधिकारी को वित्त अधिनियम, 2021 के अधीन जो भी अधिकार उपलब्ध हों, उन्हें खुला रखा जाए और/या उपलब्ध किया जाना जारी रखा जाएगा ।

11. यह आदेश **पैन इंडिया** पर लागू होगा और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा इस विवाद्यक पर पारित किए गए सभी निर्णयों और आदेशों को, जिनके अधीन इसी प्रकार की सूचनाएं जो 1 अप्रैल, 2021 के पश्चात् अधिनियम की धारा 148 के अधीन जारी की गई थीं,

अभिखंडित किया जाता है और वर्तमान आदेश द्वारा शासित होंगी तथा पूर्वोक्त सीमा तक उपांतरित हो जाएंगी । यह आदेश भारतीय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित किया जाता है जिससे राजस्व विभाग द्वारा इसी प्रकार के विवाद्यक पर इसी प्रकार के निर्णयों और आदेशों को चुनौती देते हुए अपीलों और इस न्यायालय पर लगभग 9,000 अपीलों के बोझ की दृष्टि से फाइल करने से बचा जा सके । हम यह भी मत व्यक्त करते हैं कि वर्तमान आदेश लंबित रिट याचिकाओं को भी शासित करेगा जो विभिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष लंबित हैं, जिनमें अधिनियम की धारा 148 के अधीन तारीख 1 अप्रैल, 2021 के पश्चात् जारी की गई इसी प्रकार की सूचनाएं चुनौती अधीन हैं ।

12. इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित सामान्य निर्णय और आदेश और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किए गए इसी प्रकार के निर्णयों और आदेशों को, विशिष्ट रूप से, उन विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किए गए संबंधित निर्णयों और आदेशों को, जिनके विवरण इसमें ऊपर वर्णित किए गए हैं, केवल पूर्वोक्त सीमा तक उपांतरित/प्रतिस्थापित हो जाएंगे । तद्नुसार, ये सभी अपीलें पूर्वोक्त सीमा तक भागत: मंजूर की जाती हैं ।

13. मामले के तथ्यों में खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाएगा ।

अपीलें भागत: मंजूर की गईं ।

जस.

[2022] 2 उम. नि. प. 212

स्वदेश कुमार अग्रवाल

बनाम

दिनेश कुमार अग्रवाल और अन्य

[2022 की सिविल अपील सं. 2935-2938]

5 मई, 2022

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 11(6), 14(1)(क) और 14(2) – मध्यस्थ नियुक्ति आदेश की समाप्ति और मध्यस्थ का प्रतिस्थापन – कुटुम्बिक सम्पत्ति विवाद को लेकर पक्षकारों द्वारा परस्पर सम्मति से एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किया जाना – मध्यस्थ द्वारा माध्यस्थम् कार्यवाहियों के समापन में विलंब करने के आधार पर एक पक्षकार (प्रत्यर्थियों) द्वारा मध्यस्थ आदेश को समाप्त करने के लिए जिला न्यायालय में धारा 14(1)(क) के आधार पर आवेदन फाइल किया जाना – दूसरे पक्षकार (अपीलार्थी) द्वारा उक्त आवेदन को खारिज करने के लिए सिविल प्रकिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन फाइल किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के आवेदन को खारिज किया जाना – अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल करके चुनौती दिया जाना – इसी बीच प्रत्यर्थियों में से एक द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष धारा 14(1)(क) के आधार पर मध्यस्थ नियुक्ति आदेश को समाप्त करने और एक नया मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए धारा 11(6) के अधीन आवेदन फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा धारा 11(6) के अधीन आवेदन को मंजूर किया जाना और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाएं भी खारिज किया जाना – संधार्यता – जहां माध्यस्थम् कार्यवाहियों का कोई पक्षकार धारा 14(1)(क) में वर्णित घटनाओं के आधार पर मध्यस्थ नियुक्ति आदेश को समाप्त करने की ईप्सा करता है, वहां उसके द्वारा न्यायालय में ऐसा आवेदन धारा

14(2) के अधीन फाइल किया जाएगा और ऐसे विवाद का विनिश्चय धारा 11(6) के अधीन फाइल किए आवेदन पर नहीं किया जा सकता है और ऐसा आवेदन संधार्य नहीं होगा ।

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 – धारा 11(5) और धारा 11(6) – अंतर और विभेद – जहां पक्षकारों के बीच मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया के संबंध में कोई लिखित करार नहीं किया गया है, वहां विवाद उत्पन्न होने की दशा में मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए धारा 11(5) के अधीन आवेदन संधार्य होगा और जहां पक्षकारों के बीच मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में माध्यस्थम् करार को अंतर्विष्ट करते हुए लिखित में संविदा है, वहां मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में विवाद की दशा में धारा 11(6) के अधीन आवेदन संधार्य होगा ।

इन अपीलों के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि पक्षकारों के बीच कौटुंबिक संपत्ति के विभाजन के लिए एक विवाद उद्भूत हुआ । इसे एकमात्र मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया गया । विद्वान् मध्यस्थ को स्वयं पक्षकारों द्वारा नियुक्त किया गया था । विद्वान् मध्यस्थ ने लंबित आवेदनों का विनिश्चय करने के लिए पक्षकारों को उपसंजात होने के लिए निदेश दिया । पक्षकारों के अनुरोध पर, मध्यस्थ ने सुनवाई को स्थगित कर दिया । उस तारीख को इस तथ्य के कारण कोई कार्यवाहियां नहीं हुईं चूंकि एकमात्र मध्यस्थ नगर में उपलब्ध नहीं थे । इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 और 3 – माध्यस्थम् कार्यवाहियों के पक्षकारों द्वारा एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को प्रतिसंहृत कर दिया गया । उसके पश्चात्, इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 और 3 – माध्यस्थम् कार्यवाहियों के पक्षकारों द्वारा माध्यस्थम् कार्यवाहियों का समापन करने में विलंब के आधार पर एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने के लिए संबंधित न्यायालय (जिला न्यायालय) के समक्ष माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में अधिनियम, 1996) की धारा 14(1)(क) के अधीन आवेदन फाइल किए गए । इस अपील में अपीलार्थी ने अधिनियम, 1996 की धारा 14 के अधीन उक्त आवेदनों को खारिज करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन यह निवेदन करते हुए एक आवेदन फाइल किया कि एकमात्र मध्यस्थ

की ओर से कतई कोई विलंब नहीं हुआ था और इसलिए अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने का कोई प्रश्न नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा इस अपील में अपीलार्थी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया गया । अपीलार्थी ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन को नामंजूर करते हुए पारित किए गए आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल कीं । अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन आवेदनों के लंबित रहते हुए पक्षकारों में से एक दिनेश कुमार अग्रवाल ने अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष एक माध्यस्थम् मामला फाइल किया और एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने और एक नया मध्यस्थ नियुक्त करने का अनुरोध किया । उच्च न्यायालय द्वारा उक्त माध्यस्थम् मामले को मंजूर किया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि माध्यस्थम् कार्यवाहियों के समापन में एकमात्र मध्यस्थ की ओर से असम्यक् और अयुक्तियुक्त विलंब हुआ था और उसका आदेश अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन समाप्त हो गया है । परिणामत:, उच्च न्यायालय द्वारा एक नए मध्यस्थ को नियुक्त किया गया । उच्च न्यायालय द्वारा इस अपील में अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं को भी खारिज कर दिया गया, जिनमें अपीलार्थी ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन को नामंजूर करते हुए पारित किए गए आदेश को चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करते हुए और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन को नामंजूर करते हुए पारित किए गए आदेश की पुष्टि करके रिट याचिकाओं को खारिज करते हुए पारित किए गए सामान्य निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर अपीलार्थी द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । अपीलें भागत:

मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (2) के अनुसार, पक्षकार उपधारा (6) के अधीन रहते हुए, मध्यस्थ या मध्यस्थों को नियुक्त करने के लिए किसी प्रक्रिया पर करार करने के लिए स्वतंत्र हैं । धारा 11 की उपधारा (5) में उपबंधित है कि एकमात्र मध्यस्थ वाले किसी माध्यस्थम् में, उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी करार के न होने पर यदि पक्षकार किसी मध्यस्थ पर, एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार से किए गए किसी अनुरोध की प्राप्ति से तीस दिन के भीतर, इस प्रकार सहमत होने में असफल रहते हैं तो न्यायालय मध्यस्थ की नियुक्ति कर सकता है । तथापि, ऐसे मामले में जहां कोई माध्यस्थम् करार और लिखित संविदा है तथा पक्षकारों द्वारा करार की गई नियुक्ति की प्रक्रिया है, तो अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (6) लागू होगी और धारा 11 की उपधारा (6) में घटित होने वाली घटनाओं पर कोई पक्षकार उच्च न्यायालय में समावेदन कर सकता है और अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (6) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध कर सकता है । अत: धारा 11 की उपधारा (5) उस दशा में लागू होगी, जहां मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए धारा 11 की उपधारा (2) के अनुसार करार की गई प्रक्रिया नहीं है और धारा 11 की उपधारा (6) उस दशा में लागू होगी जहां माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए कोई संविदा है और नियुक्ति की प्रक्रिया पर सहमति हुई है । अत: माध्यस्थम् के लिए मामले को निर्दिष्ट करते समय कोई माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए किसी लिखित संविदा की आवश्यकता नहीं है । किंतु पक्षकार स्वयं पारस्परिक सम्मति से विवाद को माध्यस्थम् के लिए एकमात्र मध्यस्थ को निर्दिष्ट करने का विनिश्चय कर सकते हैं । इस दशा या स्थिति में, धारा 11 की उपधारा (6) कतई लागू नहीं होगी और इसलिए ऐसी किसी स्थिति में धारा 11 की उपधारा (6) के अधीन आवेदन संधार्य नहीं होगा । धारा 11 की उपधारा (6) के अधीन आवेदन केवल उस दशा में संधार्य होगा, जहां पक्षकारों के बीच माध्यस्थम् करार को अंतर्विष्ट करते हुए लिखित में संविदा है और उसमें नियुक्ति की

प्रक्रिया विहित की गई है और उस पर सहमति हुई है । प्रस्तुत मामले में, पक्षकारों द्वारा स्वयं पारस्परिक सम्मति से और माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए किसी लिखित संविदा के अभाव में एकमात्र मध्यस्थ को नियुक्त किया गया था । अत: माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए किसी लिखित करार के अभाव में अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन कतई संधार्य नहीं था । (पैरा 6.2 और 6.3)

अब अगला प्रश्न जो इस न्यायालय के विचार के लिए उद्भूत होता है, यह है कि क्या उच्च न्यायालय अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (6) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) को ध्यान में रखते हुए एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त कर सकता है और इस आधार पर मध्यस्थ को प्रतिस्थापित कर सकता है कि वह असम्यक् विलंब के बिना कार्य करने में असफल रहा था और ऐसी स्थिति में व्यथित पक्षकार को उसके आदेश को समाप्त करने के लिए "न्यायालय" में समावेदन करना चाहिए । अधिनियम की धारा 13, 14 और 15 का संयुक्त पठन करने पर, यदि मध्यस्थ पर अधिनियम की धारा 12 में वर्णित आधारों में से किसी आधार पर आक्षेप किया जाता है, तो व्यथित पक्षकार को स्वयं माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष समुचित आवेदन प्रस्तुत करना चाहिए । तथापि, अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) में वर्णित घटनाओं में से किसी घटना की दशा में और मध्यस्थ के आदेश को इस आधार पर समाप्त किए जाने की ईप्सा की जाती है कि एकमात्र मध्यस्थ विधित: और/या वस्तुत: अपने कृत्यों का निष्पादन करने में असमर्थ हो गया है या अन्य कारणों से असम्यक् विलंब के बिना कार्य करने में असफल रहता है, तो व्यथित पक्षकार को अधिनियम, 1996 की धारा 2(ड.) के अधीन यथा परिभाषित संबंधित "न्यायालय" में समावेदन करना चाहिए । संबंधित न्यायालय को इस बात का न्यायनिर्णयन करना होगा कि क्या वास्तव में एकमात्र मध्यस्थ/मध्यस्थ विधित: और वस्तुत: अपना कृत्य/अपने कृत्यों का निष्पादन करने में असफल हो गया है/हो गए हैं या अन्य कारणों से वह असम्यक् विलंब के बिना कार्य करने में असफल रहा है । ऐसे किसी विवाद को क्यों न्यायालय के समक्ष उठाया जाना

चाहिए, इसका कारण यह है कि धारा 14(1)(क) में वर्णित घटनाओं को एकमात्र मध्यस्थ की एक निरर्हता होना कहा जा सकता है और इसलिए ऐसे किसी विवाद/संविवाद का न्यायनिर्णयन संबंधित न्यायालय द्वारा किया जाएगा, जैसा कि अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन उपबंधित है । जहां तक मध्यस्थ के आदेश की समाप्ति और/या धारा 15(1)(क) जैसे अन्य उपबंधों में वर्णित कार्यवाहियों, जहां वह किसी कारण से अपने पद से हट जाता है या पक्षकारों के करार द्वारा या उसके अनुसरण में समाप्त हो जाता है, का संबंध है, विवाद को संबंधित न्यायालय के समक्ष उठाए जाने की आवश्यकता नहीं है । उदाहरण के लिए, जहां एकमात्र मध्यस्थ स्वयं किसी कारण से अपने पद से हट जाता है या जब दोनों पक्षकार मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने और मध्यस्थ के प्रतिस्थापन के लिए सहमत हो जाते हैं, तो उसके पश्चात् आगे कोई संविवाद नहीं रह जाता है चाहे या तो एकमात्र मध्यस्थ स्वयं अपने पद से हट गया हो और/या पक्षकारों ने स्वयं मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने और मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने का करार किया हो । इस प्रकार, ऐसे किसी विवाद को न्यायालय के समक्ष उठाने का कोई प्रश्न नहीं है । अत: विधानमंडल ने जानबूझकर यह उपबंध किया है कि मध्यस्थ के आदेश को धारा 14(1)(क) के अधीन समाप्त करने के विषय में विवाद को केवल "न्यायालय" के समक्ष उठाया जाएगा । अत: जब कभी यह विवाद और/या संविवाद है कि मध्यस्थ के आदेश को धारा 14(1)(क) में वर्णित आधारों पर समाप्त किया जाना चाहिए, तो ऐसा कोई संविवाद/विवाद केवल संबंधित "न्यायालय" के समक्ष उठाया जाना चाहिए और अधिनियम, 1996 की धारा 2(ड़) के अधीन यथापरिभाषित संबंधित "न्यायालय" द्वारा विनिश्चय किए जाने के पश्चात् अंततोगत्वा यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि मध्यस्थ के आदेश को समाप्त किया जाता है, तो उसके पश्चात् तद्नुसार मध्यस्थ को प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए, वह भी उन नियमों के अनुसार जो मध्यस्थ की आरंभिक नियुक्ति को लागू थे । अत: प्रसामान्यत: और साधारणत:, उसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए जिसका उस एकमात्र मध्यस्थ की नियुक्ति के समय अनुसरण किया गया था, जिसके आदेश को समाप्त किया जाता है और/या जिसे प्रतिस्थापित किया जाता है ।

पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया जाता है – (i) अधिनियम, 1996 की धारा 11(5) और धारा (6) के बीच एक अंतर और विभेद है ; (ii) ऐसी दशा में, जहां मध्यस्थ या मध्यस्थों को नियुक्त करने की प्रक्रिया पर पक्षकारों के बीच कोई लिखित करार नहीं है, वहां पक्षकार पारस्परिक सम्मति और/या करार द्वारा किसी प्रक्रिया पर सहमत होने के लिए स्वतंत्र हैं और विवाद को किसी एकमात्र मध्यस्थ को/मध्यस्थों को निर्दिष्ट किया जा सकता है, जिसे पारस्परिक सम्मति द्वारा नियुक्त किया जा सकता है और धारा 11(2) में निर्दिष्ट किसी करार के न होने पर अधिनियम की धारा 11(5) लागू होगी और ऐसी किसी स्थिति में मध्यस्थ या मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए आवेदन अधिनियम की धारा 11(5) के अधीन संधार्य होगा न कि अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन ; (iii) ऐसे मामले में, जहां माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए एक लिखित करार और/या संविदा है और पक्षकारों द्वारा नियुक्ति और प्रक्रिया के बारे में करार किया गया है, वहां अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन आवेदन संधार्य होगा और उच्च न्यायालय या उसका नामनिर्देशिती अधिनियम की धारा 11(6)(क) से (ग) में प्रकट होने वाली घटनाओं में से किसी की दशा में मध्यस्थ या मध्यस्थों को नियुक्त कर सकता है ; (iv) जब एक बार मध्यस्थ को विवाद निर्दिष्ट कर दिया जाता है और पक्षकारों द्वारा एकमात्र मध्यस्थ को पारस्परिक सम्मति से नियुक्त किया जाता है तथा मध्यस्थ/मध्यस्थों को इस प्रकार नियुक्त किया जाता है/किए जाते हैं, तो माध्यस्थम् करार का दूसरी बार अवलंब नहीं लिया जा सकता है ; (v) ऐसे मामले में, जहां धारा 14(1)(क) में वर्णित आधार पर मध्यस्थ के आदेश को समाप्त किए जाने का विवाद/संविवाद है, तो ऐसे किसी विवाद को अधिनियम, 1996 की धारा 2(ड़) के अधीन परिभाषित "न्यायालय" के समक्ष उठाया जाना चाहिए और ऐसे किसी विवाद को अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर विनिश्चित नहीं किया जा सकता है । (पैरा 6.4, 6.7 और 11)

अब अगला प्रश्न, जो इस न्यायालय के विचार के लिए उत्पन्न

होता है, यह है कि क्या विद्वान् विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश नियम 11 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन को नामंजूर करके न्यायोचित किया था, जो अधिनियम की धारा 14 के अधीन फाइल किए गए आवेदनों को नामंजूर करने के लिए फाइल किया गया था । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन में किए गए प्रकथनों का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है और यह विवादग्रस्त नहीं है कि अधिनियम की धारा 14(2) के अधीन आवेदन को इस आधार पर नामंजूर करने की ईप्सा की गई थी कि मध्यस्थ की ओर से कोई असम्यक् विलंब नहीं हुआ था और इसलिए उसके आदेश को अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन समाप्त नहीं किया जाना चाहिए । तथापि, ऐसे किसी विवाद का न्यायनिर्णयन गुणागुण के आधार पर उस संबंधित न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए जिसके समक्ष अधिनियम की धारा 14(2) के अधीन कार्यवाहियां आरंभ की गई थीं और अधिक से अधिक इसे प्रतिरक्षा कहा जा सकता है, जिसका न्यायनिर्णयन संबंधित न्यायालय द्वारा किया जाना था । विधि की स्थिर स्थिति के अनुसार, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन का विनिश्चय करने के प्रक्रम पर केवल आवेदन/वादपत्र में के प्रकथनों और अभिकथनों पर न कि लिखित कथन और/या आवेदन के उत्तर और/या प्रतिरक्षा पर विचार किया जाना चाहिए । अत: विद्वान् विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन को ठीक ही खारिज किया था । (पैरा 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2019]	(2019) 2 एस. सी. सी. 488 **एस. पी. सिंगला कंस्ट्रक्शंस प्रा. लि.** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	3.9
[2015]	(2015) 2 एस. सी. सी. 52 **भारत संघ और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य ब्रिज कार्पोरेशन लिमिटेड** ;	4.1, 9.1

[2014] (2014) 11 एस. सी. सी. 560
एंट्रिक्स कार्पोरेशन लि. बनाम **देवास मल्टीमीडिया प्रा. लि.** ; 3.9

[2012] (2012) 7 एस. सी. सी. 71
एसीसी लि. बनाम **ग्लोबल सीमेंट्स लिमिटेड** 4.1

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2022 की सिविल अपील सं. 2935-2938.

2015 के माध्यस्थम् मामला सं. 29 और 2010 की रिट याचिका सं. 11258 और 11259 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर द्वारा तारीख 7 सितंबर, 2017 को पारित किए गए सामान्य निर्णय और आदेश तथा 2017 के पुनरीक्षण आवेदन सं. 655 में तारीख 17 नवंबर, 2017 को पारित किए गए आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री दिव्याकांत लाहोटी, शशांक गर्ग, परीक्षित आहूजा, (सुश्री) प्रवीणा बिष्ट, (सुश्री) मधुर झावर, (सुश्री) विंध्या मेहरा, कार्तिक लाहोटी, राहुल महेश्वरी और (सुश्री) शिवांगी मल्होत्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अशोक लालवानी, पाई अमित, राजेश इनामदार, प्रशांत कुमार, (सुश्री) चारु अंबवानी और रामेश्वर प्रसाद गोयल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – वर्तमान अपीलें 2015 के माध्यस्थम् मामला (एसी) सं. 29 और 2010 की रिट याचिका सं. 11258 और 11259 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, प्रधान स्थान जबलपुर द्वारा तारीख 7 सितंबर, 2017 को पारित किए गए आक्षेपित सामान्य निर्णय और आदेश तथा 2017 के पुनरीक्षण आवेदन सं. 655 में तारीख 17 नवंबर, 2017 को पारित किए गए उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे

इसमें इसके पश्चात् अधिनियम, 1996 कहा गया है) की धारा 11(6) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए स्वयं पक्षकारों द्वारा नियुक्त किए गए एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त कर दिया था और एकमात्र मध्यस्थ को प्रतिस्थापित कर दिया था तथा एक नए मध्यस्थ को इस आधार पर नियुक्त किया था कि अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) को ध्यान में रखते हुए एकमात्र मध्यस्थ का आदेश समाप्त हो गया था । इसका आधार यह है कि एकमात्र न्यायाधीश द्वारा माध्यस्थम् कार्यवाही को अग्रसर करने में असम्यक् अयुक्तियुक्त विलंब किया गया था । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा इस अपील में अपीलार्थी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 17 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश की भी पुष्टि की थी ।

2. वर्तमान अपीलों के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं :–

2.1. पक्षकारों के बीच एक विवाद, जो संपत्ति के विभाजन के लिए एक कौटुंबिक विवाद है, उद्भूत हुआ । इसे एकमात्र मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया गया । विद्वान् मध्यस्थ को स्वयं पक्षकारों द्वारा तारीख 4 अगस्त, 2008 को नियुक्त किया गया था । विद्वान् मध्यस्थ ने लंबित आवेदनों का विनिश्चय करने के लिए पक्षकारों को तारीख 14 मार्च, 2009 को उपसंजात होने के लिए निदेश दिया । पक्षकारों के अनुरोध पर, मध्यस्थ ने सुनवाई को तारीख 30 मार्च, 2009 को स्थगित कर दिया था । तारीख 30 मार्च, 2009 को इस तथ्य के कारण कोई कार्यवाहियां नहीं हुई थीं चूंकि एकमात्र मध्यस्थ नगर में उपलब्ध नहीं थे । इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 और 3 – माध्यस्थम् कार्यवाहियों के पक्षकारों ने तारीख 11 जुलाई, 2009 के पत्रों द्वारा एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को प्रतिसंहृत कर दिया । एकमात्र मध्यस्थ द्वारा पत्रों का उत्तर दिया गया । उसके पश्चात्, इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 और 3 – माध्यस्थम् कार्यवाहियों के पक्षकारों ने माध्यस्थम् कार्यवाहियों का समापन करने में विलंब के आधार पर एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने के लिए संबंधित न्यायालय (जिला न्यायालय) के समक्ष अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन आवेदन फाइल किए ।

इस अपील में अपीलार्थी ने अधिनियम, 1996 की धारा 14 के अधीन उक्त आवेदनों को खारिज करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन यह निवेदन करते हुए एक आवेदन फाइल किया कि एकमात्र मध्यस्थ की ओर से कतई कोई विलंब नहीं हुआ था और इसलिए अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने का कोई प्रश्न नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने इस अपील में अपीलार्थी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को तारीख 15 जुलाई, 2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया ।

2.2. इस अपील में अपीलार्थी ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन को नामंजूर करते हुए पारित किए गए आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2010 की रिट याचिका सं. 11259 और 2010 की रिट याचिका सं. 11258 फाइल की और अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन आवेदनों के लंबित रहते हुए पक्षकारों में से एक दिनेश कुमार अग्रवाल ने अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष एक माध्यस्थम् मामला फाइल किया और एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने और एक नया मध्यस्थ नियुक्त करने का अनुरोध किया । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा 2015 के माध्यस्थम् मामला सं. 29 को मंजूर किया और यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया कि माध्यस्थम् कार्यवाहियों के समापन में एकमात्र मध्यस्थ की ओर से असम्यक् और अयुक्तियुक्त विलंब हुआ था और उसका आदेश अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन समाप्त हो जाता है । परिणामत:, उच्च न्यायालय ने एक नए मध्यस्थ को नियुक्त किया । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा इस अपील में अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं को भी खारिज कर दिया, जिनमें अपीलार्थी ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन को नामंजूर करते हुए पारित किए गए आदेश को चुनौती दी थी ।

2.3. उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन समाप्त करते हुए और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन को नामंजूर करते हुए पारित किए गए आदेश की पुष्टि करके रिट याचिकाओं को खारिज करते हुए पारित किए गए आक्षेपित सामान्य निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर अपीलार्थी ने ये अपीलें फाइल की हैं ।

3. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री दिव्याकांत लाहोटी ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर मध्यस्थ के आदेश को अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन समाप्त करके तात्विक रूप से गलती की है ।

3.1 यह भी दलील दी गई कि ऐसी दशा में, जहां स्वयं पक्षकारों द्वारा पहले ही मध्यस्थ को नियुक्त किया गया था, वहां तत्पश्चात् अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन कोई आवेदन न तो एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने के लिए और/या मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने के लिए संधार्य था ।

3.2 विद्वान् काउंसेल, श्री लाहोटी द्वारा यह दलील दी गई कि मध्यस्थ के आदेश को केवल माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के उपबंधों के अनुसार समाप्त किया जा सकता है और/या उसका पर्यवसान हो सकता है । अधिनियम, 1996 की धारा 13, 14, 15, 25(क), 30 और 32 का अवलंब लिया गया । यह दलील दी गई कि अधिनियम, 1996 के अधीन पूर्वोक्त उपबंधों के सिवाय, मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने के लिए कोई उपबंध नहीं है ।

3.3 यह दलील दी गई कि अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) में वर्णित घटनाओं की दशा में, व्यथित पक्षकार को उपलब्ध उपचार यह होगा कि वह अधिनियम, 1996 की धारा 2(ड़) में यथापरिभाषित

"न्यायालय" में समावेदन करें ।

3.4 अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री लाहोटी ने यह भी दलील दी कि प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 और 3 - माध्यस्थम् कार्यवाहियों के पक्षकारों ने वास्तव में अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन आवेदन प्रस्तुत किए थे, जो उस समय पर संबंधित न्यायालय के समक्ष लंबित थे जब अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन फाइल किया गया था ।

3.5 यह भी आग्रह किया गया कि वास्तव में अधिनियम, 1996 की धारा 11(5) और धारा 11(6) के बीच एक अंतर और विभेद है ।

3.6 माध्यस्थम् करार को अंतर्विष्ट करते हुए किसी लिखित संविदा के अभाव में अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) लागू नहीं होगी और इसलिए इस उपबंध के अधीन आवेदन संधार्य नहीं होगा ।

3.7 अन्यथा भी, एकमात्र मध्यस्थ की ओर से माध्यस्थम् कार्यवाहियों में कोई ऐसा असम्यक् विलंब नहीं हुआ था, जिसके कारण उसके आदेश को और वह भी अधिनियम, 1996 की धारा 11(5) और धारा 11(6) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए समाप्त किया जा सकता था ।

3.8 अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री लाहोटी द्वारा यह भी दलील दी गई कि चूंकि एकमात्र मध्यस्थ की ओर से कोई असम्यक् विलंब नहीं हुआ था, इसलिए धारा 14(1)(क) लागू नहीं होगी । इसलिए अधिनियम, 1996 की धारा 14 के अधीन आवेदन को खारिज किया जाना चाहिए था और विद्वान् विचारण न्यायालय को अपीलार्थी द्वारा अधिनियम, 1996 की धारा 14 के अधीन आवेदन को नामंजूर करने के लिए फाइल किए गए आवेदन को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए मंजूर करना चाहिए था । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने रिट याचिकाओं को खारिज करके और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन को

खारिज करते हुए पारित किए गए आदेश की पुष्टि करके गंभीर गलती कारित की थी ।

3.9 अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री लाहोटी ने **एंट्रिक्स कार्पोरेशन लि.** बनाम **देवास मल्टीमीडिया प्रा. लि.**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय और **एस. पी. सिंगला कंस्ट्रक्शंस प्रा. लि.** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चय का अपनी इन दलीलों के समर्थन में जोरदार रूप से अवलंब लिया गया कि जब एक बार पक्षकारों ने माध्यस्थम् कार्यवाहियों का अवलंब लिया हो और मध्यस्थ को नियुक्त किया गया हो, तो अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन पश्चात्वर्ती आवेदन संधार्य नहीं होगा ।

4. प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री अशोक लालवानी और प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री राजेश इनामदार द्वारा प्रस्तुत अपील का जोरदार रूप से विरोध किया गया । प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री लालवानी ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जब यह पाया गया था कि माध्यस्थम् कार्यवाहियों का समापन करने में मध्यस्थ की ओर से असम्यक् विलंब हुआ था, तो अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) पर विचार करते हुए उसके आदेश को ठीक ही समाप्त किया गया था ।

4.1 यह दलील दी गई कि उक्त अधिनियम की धारा 14(1) के अनुसार, प्रयुक्त किया गया शब्द "हो जाएगा (सैल)" है । यह दलील दी गई कि इस धारा में यह उपबंधित है कि किसी मध्यस्थ का आदेश पर्यवसित हो जाएगा और उसे किसी अन्य मध्यस्थ द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा, यदि वह विधित: या वस्तुत: अपने कृत्यों का पालन करने में असफल हो जाता है या अन्य कारणों से असम्यक् विलंब के बिना कार्य करने में असफल रहता है । यह दलील दी गई कि अत: जब एक

---

[1] (2014) 11 एस. सी. सी. 560.

[2] (2019) 2 एस. सी. सी. 488.

बार यह पाया जाता है कि मध्यस्थ अधिनियम, 1996 की धारा 14(1) में वर्णित घटनाओं के कारण अपने कृत्यों का पालन करने में असमर्थ है, तो मध्यस्थ का आदेश स्वयंमेव समाप्त हो जाएगा और उसे किसी अन्य मध्यस्थ द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा । **एसीसी लि.** बनाम **ग्लोबल सीमेंट्स लिमिटेड**[1] और **भारत संघ और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य ब्रिज कार्पोरेशन लिमिटेड**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया गया ।

4.2 प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री लालवानी ने यह भी दलील दी कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विद्वान् विचार न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन मंजूर करके कोई गलती नहीं की गई थी । यह दलील दी गई कि एकमात्र मध्यस्थ की ओर से असम्यक् विलंब किया गया था या नहीं, एक ऐसा प्रश्न है, जिसका न्यायनिर्णयन न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए और अधिक से अधिक इसे एक प्रतिरक्षा कहा जा सकता है । विधि की स्थिर स्थिति के अनुसार, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन का विनिश्चय करने के प्रक्रम पर केवल आवेदन/वादपत्र में किए गए प्रकथनों पर विचार किया जाना चाहिए न कि प्रतिरक्षा पर और/या लिखित कथन में कथित पक्षकथन पर और/या किसी आवेदन के उत्तर पर । यह दलील दी गई कि अत: विद्वान् विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 7 आदेश 11 के अधीन आवेदन को ठीक ही नामंजूर किया था और अधिनियम, 1996 की धारा 14 के अधीन प्रस्तुत किए गए आवेदन को नामंजूर करने से ठीक ही इनकार किया था । किसी भी स्थिति में, आक्षेपित आदेश पारित करने के पश्चात् मूल आवेदकों-प्रत्यर्थियों ने अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन अपने आवेदनों को पहले ही प्रत्याहृत कर लिया था ।

4.3 उपरोक्त दलीलें देते हुए और उपरोक्त विनिश्चयों का अवलंब

---

[1] (2012) 7 एस. सी. सी. 71.

[2] (2015) 2 एस. सी. सी. 52.

लेते हुए प्रस्तुत अपीलों को खारिज करने का अनुरोध किया गया ।

5. हमने अलग-अलग पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना ।

6. हमारे विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न उद्भूत होते हैं –

(i) क्या उच्च न्यायालय अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त कर सकता है ?

(ii) क्या माध्यस्थम् करार को अंतर्विष्ट करते हुए किसी लिखित संविदा के अभाव में अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन संधार्य होगा ?

(iii) क्या अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (5) और धारा 11 की उपधारा (6) के बीच कोई अंतर या विभेद है ?

(iv) क्या धारा 11 की उपधारा (6) के अधीन आवेदन उस मामले में संधार्य होगा जहां स्वयं पक्षकारों ने पारस्परिक सम्मति से किसी एकमात्र मध्यस्थ को नियुक्त किया हो ?

(v) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को इस आधार पर समाप्त करके न्यायोचित किया था कि एकमात्र मध्यस्थ की ओर से माध्यस्थम् कार्यवाहियों का समापन करने में असम्यक् विलंब हुआ था, जिसके कारण अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन करने पर उसका आदेश समाप्त हो जाएगा ?

(vi) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विद्वान् विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा अधिनियम की धारा 14(2) के अधीन प्रस्तुत किए गए आवेदन को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए खारिज करके न्यायोचित किया था ?

प्रश्न सं. (i) से (v) परस्पर संबद्ध हैं । इसलिए सभी पर एकसाथ विचार और विनिश्चय किया गया है ।

6.1 प्रस्तुत मामले में स्वयं पक्षकारों द्वारा पारस्परिक सम्मति से एकमात्र मध्यस्थ को नियुक्त किया गया था । माध्यस्थम् खंड अंतर्विष्ट करते हुए कोई लिखित करार/संविदा नहीं थी ।

6.2 धारा 11 की उपधारा (2) के अनुसार, पक्षकार उपधारा (6) के अधीन रहते हुए, मध्यस्थ या मध्यस्थों को नियुक्त करने के लिए किसी प्रक्रिया पर करार करने के लिए स्वतंत्र हैं । धारा 11 की उपधारा (5) में उपबंधित है कि एकमात्र मध्यस्थ वाले किसी माध्यस्थम् में, उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी करार के न होने पर यदि पक्षकार किसी मध्यस्थ पर, एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार से किए गए किसी अनुरोध की प्राप्ति से तीस दिन के भीतर, इस प्रकार सहमत होने में असफल रहते हैं तो न्यायालय मध्यस्थ की नियुक्ति कर सकता है । तथापि, ऐसे मामले में जहां कोई माध्यस्थम् करार और लिखित संविदा है तथा पक्षकारों द्वारा करार की गई नियुक्ति की प्रक्रिया है, तो अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (6) लागू होगी और धारा 11 की उपधारा (6) में घटित होने वाली घटनाओं पर कोई पक्षकार उच्च न्यायालय में समावेदन कर सकता है और अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (6) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध कर सकता है । अत: धारा 11 की उपधारा (5) उस दशा में लागू होगी, जहां मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए धारा 11 की उपधारा (2) के अनुसार करार की गई प्रक्रिया नहीं है और धारा 11 की उपधारा (6) उस दशा में लागू होगी जहां माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए कोई संविदा है और नियुक्ति की प्रक्रिया पर सहमति हुई है । अत: माध्यस्थम् के लिए मामले को निर्दिष्ट करते समय कोई माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए किसी लिखित संविदा की आवश्यकता नहीं है । किंतु पक्षकार स्वयं पारस्परिक सम्मति से विवाद को माध्यस्थम् के लिए एकमात्र मध्यस्थ को निर्दिष्ट करने का विनिश्चय कर सकते हैं । इस दशा या स्थिति में, धारा 11 की उपधारा (6) कतई लागू नहीं होगी और इसलिए ऐसी किसी स्थिति में धारा 11 की उपधारा (6) के अधीन आवेदन संधार्य नहीं होगा । धारा 11 की उपधारा (6) के अधीन आवेदन केवल उस दशा में संधार्य होगा, जहां पक्षकारों के बीच माध्यस्थम् करार

को अंतर्विष्ट करते हुए लिखित में संविदा है और उसमें नियुक्ति की प्रक्रिया विहित की गई है और उस पर सहमति हुई है ।

6.3 प्रस्तुत मामले में, पक्षकारों द्वारा स्वयं पारस्परिक सम्मति से और माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए किसी लिखित संविदा के अभाव में एकमात्र मध्यस्थ को नियुक्त किया गया था । अत: माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए किसी लिखित करार के अभाव में अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन कतई संधार्य नहीं था ।

6.4 अब अगला प्रश्न जो इस न्यायालय के विचार के लिए उद्भूत होता है, यह है कि क्या उच्च न्यायालय अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (6) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) को ध्यान में रखते हुए एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त कर सकता है और इस आधार पर मध्यस्थ को प्रतिस्थापित कर सकता है कि वह असम्यक् विलंब के बिना कार्य करने में असफल रहा था और ऐसी स्थिति में व्यथित पक्षकार को उसके आदेश को समाप्त करने के लिए "न्यायालय" में समावेदन करना चाहिए ।

6.4.1 पूर्वोक्त प्रश्न/विवाद्यक का उत्तर देते हुए, मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने और अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित अधिनियम, 1996 के सुसंगत उपबंधों को निर्दिष्ट किया जाना आवश्यक है :–

> "**11. मध्यस्थों की नियुक्ति** – (1) किसी भी राष्ट्रीयता का कोई व्यक्ति, जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो, मध्यस्थ हो सकता है ।
>
> (2) उपधारा (6) के अधीन रहते हुए, पक्षकार मध्यस्थ या मध्यस्थों को किसी भी प्रक्रिया पर करार करने के लिए स्वतंत्र हैं ।
>
> (3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी करार के न होने पर, तीन मध्यस्थों वाले किसी माध्यस्थम् में, प्रत्येक पक्षकार एक मध्यस्थ नियुक्त करेगा और दो नियुक्त मध्यस्थ ऐसे तीसरे मध्यस्थ को

नियुक्त करेंगे, जो पीठासीन मध्यस्थ के रूप में कार्य करेगा ।

(3क) उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को समय-समय पर ऐसी माध्यस्थम् संस्थाओं को पदाभिहित करने की शक्ति होगी, जिन्हें परिषद् द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए धारा 43-I के अधीन वर्गीकृत किया गया है :

परंतु उन उच्च न्यायालय की अधिकारिताओं की बाबत, जहां कोई वर्गीकृत माध्यस्थम् संस्था उपलब्ध नहीं है, तब संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति माध्यस्थम् संस्था के कृत्यों और कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए एक पैनल को बनाए रख सकेगा और मध्यस्थ को किया गया कोई निर्देश इस धारा के प्रयोजनों के लिए माध्यस्थम् संस्था को किया गया समझा जाएगा और किसी पक्षकार द्वारा नियुक्त मध्यस्थ ऐसी दर पर उतनी फीस का हकदार होगा, जो चौथी अनुसूची में विनिर्दिष्ट किया गया है :

परंतु यह भी कि संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति समय-समय पर मध्यस्थों के पैनल का पुनर्विलोकन कर सकेंगे ।

(4) यदि उपधारा (3) की नियुक्ति की प्रक्रिया लागू होती है और –

(क) कोई पक्षकार किसी मध्यस्थ को नियुक्त करने में, दूसरे पक्षकार से ऐसा करने के किसी अनुरोध की प्राप्ति से तीस दिन के भीतर, असफल रहता है, या

(ख) दो नियुक्त मध्यस्थ अपनी नियुक्ति की तारीख से तीस दिन के भीतर तीसरे मध्यस्थ पर सहमत होने में असफल रहते हैं,

तो नियुक्ति, किसी पक्षकार के अनुरोध पर, यथास्थिति, अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् की दशा में उच्चतम न्यायालय द्वारा, या अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् से भिन्न माध्यस्थमों की दशा में उच्च न्यायालय द्वारा पदाभिहित माध्यस्थम् संस्था द्वारा की जाएगी ;

(5) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी करार के न होने पर, एकमात्र मध्यस्थ वाले किसी माध्यस्थम् में, यदि पक्षकार किसी मध्यस्थ पर, एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार से किए गए किसी अनुरोध की प्राप्ति से तीस दिन के भीतर इस प्रकार सहमत होने में असफल रहते हैं, तो नियुक्ति किसी पक्षकार के आवेदन पर उपधारा (4) में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार की जाएगी ;

(6) जहां पक्षकारों द्वारा करार पाई गई किसी नियुक्ति की प्रक्रिया के अधीन,–

(क) कोई पक्षकार उस प्रक्रिया के अधीन अपेक्षित रूप में कार्य करने में असफल रहता है ; या

(ख) पक्षकार अथवा दो नियुक्त मध्यस्थ, उस प्रक्रिया के अधीन उनसे अपेक्षित किसी करार पर पहुंचने में असफल रहते हैं ; या

(ग) कोई व्यक्ति, जिसके अंतर्गत कोई संस्था है, उस प्रक्रिया के अधीन उसे सौंपे गए किसी कृत्य का निष्पादन करने में असफल रहता है, वहां आवश्यक उपाय करने के लिए नियुक्ति किसी पक्षकार के अनुरोध पर, यथास्थिति, अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् की दशा में उच्चतम न्यायालय द्वारा, या अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् से भिन्न माध्यस्थमों की दशा में उच्च न्यायालय द्वारा पदाभिहित माध्यस्थम् संस्था द्वारा की जाएगी, जब तक कि नियुक्ति प्रक्रिया के किसी करार में नियुक्ति सुनिश्चित कराने के अन्य साधनों के लिए उपबंध न किया गया हो ;

(6ख) उच्चतम न्यायालय या, यथास्थिति उच्च न्यायालय द्वारा इस धारा के प्रयोजनों के लिए किसी व्यक्ति या संस्था के पदनाम को उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक शक्ति के प्रत्यायोजन के रूप में नहीं समझा जाएगा ;

(8) उपधारा (4), (5) और (6) में निर्दिष्ट माध्यस्थम् संस्था किसी मध्यस्थ को नियुक्त करने से पूर्व संभावित मध्यस्थ से धारा

12 की उपधारा (1) के निबंधनों के अनुसार लिखित में एक प्रकटन की ईप्सा करेगी और निम्नलिखित का सम्यक् रूप से ध्यान रखेगी–

(क) पक्षकारों के करार द्वारा अपेक्षित मध्यस्थ की कोई अर्हता ; और

(ख) प्रकटन की अंतर्वस्तुएं और अन्य बातें, जिनसे किसी स्वतंत्र और निष्पक्ष मध्यस्थ की नियुक्ति सुनिश्चित किए जाने की संभावना है ।

(9) किसी अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् में एकमात्र या तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति की दशा में, जहां पक्षकार विभिन्न राष्ट्रीयताओं के हैं, वहां उच्चतम न्यायालय द्वारा पदाभिहित माध्यस्थम् संस्था पक्षकारों की राष्ट्रीयता से भिन्न किसी राष्ट्रीयता वाला कोई मध्यस्थ नियुक्त कर सकेगी ।

(11) जहां विभिन्न माध्यस्थम् संस्थाओं से उपधारा (4) या उपधारा (5) या उपधारा (6) के अधीन एक से अधिक बार अनुरोध किया गया है, वहां केवल वही माध्यस्थम् संस्था, जिससे सुसंगत उपधारा के अधीन प्रथम बार अनुरोध किया गया है, नियुक्त करने के लिए सक्षम होगी ।

(12) जहां उपधारा (4), (5), (6) और (8) में निर्दिष्ट विषय किसी अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् में उद्भूत होता है, वहां उन उपधाराओं में माध्यस्थम् संस्था के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उपधारा (3क) के अधीन पदाभिहित माध्यस्थम् संस्था के प्रति निर्देश है ।

(13) मध्यस्थ या मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए इस धारा के अधीन किए गए आवेदन का निपटारा माध्यस्थम् संस्था द्वारा विरोधी पक्षकार को सूचना की तामीली की तारीख से 30 दिन के भीतर किया जाएगा ।

(14) माध्यस्थम् संस्था माध्यस्थम् अधिकरण की फीस और

माध्यस्थम् अधिकरण को इसके संदाय की रीति का अवधारण चौथी अनुसूची में विनिर्दिष्ट दरों के अध्यधीन रहते हुए करेगी ।

स्पष्टीकरण – शंकाओं को दूर करने के लिए तद्द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि यह उपधारा अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् और उन माध्यस्थमों (अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् से भिन्न) को लागू नहीं होगी, जहां पक्षकार किसी माध्यस्थम् संस्था के नियमों के अनुसार फीस का अवधारण करने के लिए सहमत हुए हैं ।

12. आक्षेप के लिए आधार – (1) जहां किसी व्यक्ति से किसी मध्यस्थ के रूप में उसकी संभावित नियुक्ति के संबंध में प्रस्ताव किया जाता है, वहां वह लिखित में ऐसी किन्हीं परिस्थितियों को प्रकट करेगा –

(क) जैसे किसी पक्षकार के साथ भूतकाल या वर्तमान में या तो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई संबंध या उनमें हित की विद्यमानता या विवादग्रस्त विषय के संबंध में, चाहे वित्तीय, कारबार, पेशे या अन्य प्रकार का ऐसा हित, जिससे उसकी स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में उचित शंकाएं उठने की संभावना हो ; और

(ख) जिनसे माध्यस्थम् के लिए पर्याप्त समय देने के लिए उसकी समर्थता और विशिष्टतया संपूर्ण माध्यस्थम् को बारह माह की अवधि के भीतर पूर्ण करने के लिए उसकी समर्थता पर प्रभाव पड़ने की संभावना है ।

स्पष्टीकरण 1 – चौथी अनुसूची में उल्लिखित आधार यह अवधारण करने में मार्गदर्शन करेंगे कि क्या ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं, जो किसी मध्यस्थ की स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में उचित शंकाओं को उत्पन्न करती हों ।

स्पष्टीकरण 2 – ऐसे व्यक्ति द्वारा ऐसा प्रकटन छठी अनुसूची में विनिर्दिष्ट प्ररूप में किया जाएगा ।

(2) कोई मध्यस्थ, अपनी नियुक्ति के समय से और संपूर्ण माध्यस्थम् कार्यवाहियों के दौरान, विलंब के बिना पक्षकारों को उपधारा (1) में निर्दिष्ट किन्हीं परिस्थितियों को लिखित रूप में तब प्रकट करेगा, जबकि उसके द्वारा उनके बारे में पहले ही सूचित न कर दिया गया हो ।

(3) किसी मध्यस्थ पर केवल तभी आक्षेप किया जा सकेगा, यदि –

(क) ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हों, जो उसकी स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में उचित शंकाओं को उत्पन्न करती हों ; या

(ख) उसके पास पक्षकारों द्वारा तय पाई गई अर्हताएं न हों ।

(4) कोई पक्षकार, ऐसे किसी मध्यस्थ पर, जो उसके द्वारा नियुक्त हो या जिसकी नियुक्ति में उसने भाग लिया हो, केवल उन कारणों से जिनसे वह नियुक्ति किए जाने के पश्चात् अवगत होता है, आक्षेप कर सकेगा ।

(5) कोई प्रतिकूल पूर्व करार होते हुए भी, कोई व्यक्ति जिसका पक्षकारों या काउंसेल या विवादग्रस्त विषय के साथ संबंध है, सातवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी प्रवर्ग के अंतर्गत आता है, तो वह मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अनर्हित होगा :

परंतु पक्षकार उनके बीच विवादों के उद्भूत होने के पश्चात् लिखित रूप में अभिव्यक्त करार द्वारा इस उपधारा की प्रयोज्यता का अधित्यजन कर सकेंगे ।

13. आक्षेप की प्रक्रिया – (1) उपधारा (4) के अधीन रहते हुए पक्षकार किसी मध्यस्थ पर आक्षेप करने के लिए किसी प्रक्रिया पर करार करने के लिए स्वतंत्र हैं ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी करार के न होने पर, कोई

पक्षकार, जो मध्यस्थ पर आक्षेप करने का आशय रखता है, माध्यस्थम् अधिकरण के गठन से अवगत होने के पश्चात् या धारा 12 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट किन्हीं परिस्थितियों से अवगत होने के पश्चात् पंद्रह दिन के भीतर माध्यस्थम् अधिकरण पर आक्षेप करने के कारणों का लिखित कथन भेजेगा ।

(3) जब तक कि वह मध्यस्थ, जिस पर उपधारा (2) के अधीन आक्षेप किया गया है, अपने पद से हट नहीं जाता है या अन्य पक्षकार आक्षेप से सहमत नहीं हो जाता है, माध्यस्थम् अधिकरण आक्षेप से निश्चय करेगा ।

(4) यदि पक्षकारों द्वारा करार पाई गई किसी प्रक्रिया के अधीन या उपधारा (2) के अधीन प्रक्रिया के अधीन कोई आक्षेप सफल नहीं होता है तो माध्यस्थम् अधिकरण, माध्यस्थम् कार्यवाहियों को चालू रखेगा और माध्यस्थम् पंचाट देगा ।

(5) जहां उपधारा (4) के अधीन कोई माध्यस्थम् पंचाट दिया जाता है, वहां मध्यस्थ पर आक्षेप करने वाला पक्षकार धारा 34 के अनुसार ऐसा माध्यस्थम् पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन कर सकेगा ।

(6) जहां कोई माध्यस्थम् पंचाट उपधारा 5 के अधीन किए गए आवेदन पर अपास्त किया जाता है, वहां न्यायालय यह विनिश्चय कर सकेगा कि क्या मध्यस्थ, जिस पर आक्षेप किया गया है, किसी फीस का हकदार है ।

14. कार्य करने में असफलता या असंभाव्यता – (1) किसी मध्यस्थ का आदेश पर्यवसित हो जाएगा और उसे किसी अन्य मध्यस्थ द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा, यदि वह –

(क) विधित: या वस्तुत: अपने कृत्यों का निष्पादन करने में असफल हो जाता है या अन्य कारणों से असम्यक् विलंब के बिना कार्य करने में असफल रहता है ; और

(ख) अपने पद से हट जाता है या पक्षकार उसके आदेश

की समाप्ति के लिए करार कर लेते हैं ।

(2) यदि उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट आधारों में से किसी से संबंधित कोई विवाद शेष रहता है तो कोई पक्षकार, जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो, न्यायालय को आदेश की समाप्ति पर विनिश्चय करने के लिए आवेदन कर सकेगा ।

(3) यदि इस धारा या धारा 13 की उपधारा (3) के अधीन कोई मध्यस्थ अपने पद से हट जाता है या कोई पक्षकार किसी मध्यस्थ के आदेश की समाप्ति के लिए सहमत हो जाता है, तो उसमें इस धारा या धारा 12 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट किसी आधार की विधिमान्यता की स्वीकृति विवक्षित नहीं होगी ।

15. आदेश की समाप्ति और मध्यस्थ का प्रतिस्थापन – (1) धारा 13 या धारा 14 में निर्दिष्ट परिस्थितियों के साथ-साथ किसी मध्यस्थ का आदेश–

(क) जहां वह किसी कारण से अपने पद से हट जाता है, या

(ख) पक्षकारों के करार द्वारा या उसके अनुसरण में, समाप्त हो जाएगा ।

(2) जहां किसी मध्यस्थ का आदेश समाप्त हो जाता है वहां प्रतिस्थानी मध्यस्थ, उन नियमों के अनुसार, जो प्रतिस्थापित होने वाले मध्यस्थ की नियुक्ति को लागू थे, नियुक्त किया जाएगा ।

(3) जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो, जहां कोई मध्यस्थ उपधारा (2) के अधीन प्रतिस्थापित किया जाता है वहां पहले की गई कोई सुनवाई माध्यस्थम् अधिकरण के विवेकानुसार पुन: की जा सकेगी ।

(4) जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो, इस धारा के अधीन किसी मध्यस्थ के प्रतिस्थापन के पूर्व माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा किया गया कोई आदेश या विनिर्णय

केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगा कि माध्यस्थम् अधिकरण की संरचना में कोई परिवर्तन हुआ है ।

* * * *

25. किसी पक्षकार का व्यतिक्रम – जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो, जहां पर्याप्त हेतु दर्शित किए बिना,–

(क) दावेदार धारा 23 की उपधारा (1) के अनुसार दावे का अपना कथन संसूचित करने में असफल रहता है, वहां माध्यस्थम् अधिकरण कार्यवाहियों को समाप्त कर देगा ;

(ख) प्रत्यर्थी धारा 23 की उपधारा (1) के अनुसार प्रतिरक्षा का अपना कथन संसूचित करने में असफल रहता है, वहां माध्यस्थम् अधिकरण उस असफलता को दावेदार द्वारा किए गए अभिकथन को स्वयमेव स्वीकृति के रूप में माने बिना कार्यवाहियों को चालू रखेगा और प्रत्यर्थी के प्रतिरक्षा के ऐसे कथन को, जो समपहृत हो गया है, फाइल करने का अधिकार समझने का विवेकाधिकार होगा ।

(ग) यदि कोई पक्षकार मौखिक सुनवाई पर उपसंजात होने में या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने में असफल रहता है तो माध्यस्थम् अधिकरण कार्यवाहियों को जारी रख सकेगा और उसके समक्ष उपलब्ध साक्ष्य पर माध्यस्थम् पंचाट दे सकेगा ।

* * * *

30. समझौता – (1) माध्यस्थम् अधिकरण के लिए, विवाद के समझौते को प्रोत्साहित करना, माध्यस्थम् करार से बेमेल नहीं है और पक्षकारों की सहमति से माध्यस्थम् अधिकरण समझौता प्रोत्साहित करने के लिए माध्यस्थम् कार्यवाहियों के दौरान किसी समय पर समझौते को प्रोत्साहित करने के लिए मध्यस्थता, सुलह या अन्य प्रक्रियाओं का प्रयोग कर सकेगा ।

(2) यदि माध्यस्थम् कार्यवाहियों के दौरान पक्षकार विवाद तय कर लेते हैं, तो माध्यस्थम् अधिकरण कार्यवाहियों को समाप्त कर देगा और यदि पक्षकारों द्वारा अनुरोध किया जाता है और माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा विरोध नहीं किया जाता है, तो करार पाए गए निबंधनों पर माध्यस्थम् पंचाट के रूप में समझौते को अभिलिखित करेगा ।

(3) करार पाए गए निबंधनों पर माध्यस्थम् पंचाट धारा 31 के अनुसार दिया जाएगा और उसमें यह उल्लिखित होगा कि वह माध्यस्थम् पंचाट है ।

(4) करार पाए गए निबंधनों पर माध्यस्थम् पंचाट की वही प्रास्थिति होगी और उसका वही प्रभाव होगा, जो विवाद के सार पर किसी अन्य माध्यस्थम् पंचाट का होता है ।

* * * *

32. कार्यवाहियों का समापन – (1) माध्यस्थम् कार्यवाहियों का समापन, अंतिम माध्यस्थम् पंचाट द्वारा या उपधारा (2) के अधीन माध्यस्थम् अधिकरण आदेश द्वारा होगा ।

(2) माध्यस्थम् अधिकरण, माध्यस्थम् कार्यवाहियों के समापन का वहां आदेश देगा, जहां –

(क) दावेदार अपने दावे को, जब तक कि प्रत्यर्थी आदेश पर आक्षेप नहीं करता और विवाद का अंतिम परिनिर्धारण अभिप्राप्त करने में माध्यस्थम् अधिकरण उसके विधिसम्मत हितों को मान्यता नहीं देता है, प्रत्याहृत कर लेता है ;

(ख) पक्षकार कार्यवाहियों के समापन के लिए सहमत हो जाते हैं ; या

(ग) माध्यस्थम् अधिकरण का यह निष्कर्ष है कि कार्यवाहियों को जारी रखना अन्य किसी कारण से अनावश्यक या असंभव हो गया है ।

(3) धारा 33 और धारा 34 की उपधारा (4) के अधीन रहते

हुए, माध्यस्थम् अधिकरण की समाज्ञा का, माध्यस्थम् कार्यवाहियों के समापन के साथ, अंत हो जाएगा ।"

पूर्वोक्त उपबंधों के सिवाय, मध्यस्थ के आदेश के समापन और/या माध्यस्थम् कार्यवाहियों के समापन से संबंधित अधिनियम, 1996 के अधीन कोई अन्य उपबंध नहीं है ।

6.4.2 धारा 13 में यह उपबंधित है कि उपधारा (4) के अधीन रहते हुए पक्षकार किसी मध्यस्थ पर आक्षेप करने के लिए किसी प्रक्रिया पर करार करने के लिए स्वतंत्र हैं और किसी करार के न होने पर, कोई पक्षकार, जो मध्यस्थ पर आक्षेप करने का आशय रखता है, माध्यस्थम् अधिकरण के गठन से अवगत होने के पश्चात् या धारा 12 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट किन्हीं परिस्थितियों से अवगत होने के पश्चात् पंद्रह दिन के भीतर माध्यस्थम् अधिकरण पर आक्षेप करने के कारणों का लिखित कथन भेजेगा । धारा 13 की उपधारा (3) के अनुसार, जब तक कि वह मध्यस्थ, जिस पर उपधारा (2) के अधीन आक्षेप किया गया है, अपने पद से हट नहीं जाता है या अन्य पक्षकार आक्षेप से सहमत नहीं हो जाता है, माध्यस्थम् अधिकरण आक्षेप पर विनिश्चय करेगा । यदि मध्यस्थ को किया गया कोई आक्षेप सफल नहीं होता है, तो उस दशा में माध्यस्थम् अधिकरण, माध्यस्थम् कार्यवाहियों को चालू रखेगा और माध्यस्थम् पंचाट देगा और जब उपधारा (4) के अधीन कोई माध्यस्थम् पंचाट दिया जाता है, वहां मध्यस्थ पर आक्षेप करने वाला पक्षकार अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अनुसार ऐसा माध्यस्थम् पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन कर सकेगा । इसलिए अधिनियम की धारा 13 के अनुसार मध्यस्थ पर आक्षेप स्वयं माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष किया जाएगा । तथापि, अधिनियम, 1996 की धारा 13 केवल उस दशा में लागू होगी, जहां मध्यस्थ पर आक्षेप अधिनियम, 1996 की धारा 12 में वर्णित आधारों पर किया जाता है ।

6.5 धारा 14 और 15 में मध्यस्थ के आदेश की समाप्ति के लिए उपबंध किया गया है । अधिनियम, 1996 की धारा 14 में यह उपबंधित है कि मध्यस्थ का आदेश धारा 14(1)(क) में वर्णित किसी घटना की दशा में समाप्त हो जाएगा और उसे किसी अन्य मध्यस्थ द्वारा

प्रतिस्थापित किया जाएगा । धारा 14 की उपधारा (2) के अनुसार, यदि उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट आधारों में से किसी से संबंधित कोई विवाद शेष रहता है तो कोई पक्षकार, आदेश की समाप्ति पर विनिश्चय करने के लिए "न्यायालय" को आवेदन कर सकेगा । "न्यायालय" अभिव्यक्ति अधिनियम, 1996 की धारा 2(ङ में परिभाषित है, जो निम्न प्रकार से है :–

> "(ङ) 'न्यायालय' से –
>
> (i) अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् से भिन्न किसी माध्यस्थम् की दशा में, किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत अपनी मामूली आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी है, जो माध्यस्थम् की विषय-वस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषय-वस्तु होते तो विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता, किंतु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अंतर्गत नहीं आता है ;
>
> (ii) अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् की दशा में, अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय अभिप्रेत है, जो माध्यस्थम् की विषय-वस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषय-वस्तु होते तो विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता, किंतु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अंतर्गत नहीं आता है ;"

6.6 धारा 15 में मध्यस्थ के आदेश की समाप्ति के लिए अन्य आधार उपबंधित हैं । इसमें यह उपबंधित है कि धारा 13 या धारा 14 में निर्दिष्ट परिस्थितियों के साथ-साथ किसी मध्यस्थ का आदेश (क) जहां वह किसी कारण से अपने पद से हट जाता है, या (ख) पक्षकारों के करार द्वारा या उसके अनुसरण में समाप्त हो जाएगा और जहां किसी मध्यस्थ का आदेश धारा 15(1)(क) और (ख) में वर्णित पूर्वोक्त आधारों

पर समाप्त हो जाता है, ऐसी किसी स्थिति में प्रतिस्थानी मध्यस्थ नियुक्त किया जाएगा और वह भी उन नियमों के अनुसार, जो प्रतिस्थापित होने वाले मध्यस्थ की नियुक्ति को लागू थे ।

6.7 अत: अधिनियम की धारा 13, 14 और 15 का संयुक्त पठन करने पर, यदि मध्यस्थ पर अधिनियम की धारा 12 में वर्णित आधारों में से किसी आधार पर आक्षेप किया जाता है, तो व्यथित पक्षकार को स्वयं माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष समुचित आवेदन प्रस्तुत करना चाहिए । तथापि, अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) में वर्णित घटनाओं में से किसी घटना की दशा में और मध्यस्थ के आदेश को इस आधार पर समाप्त किए जाने की ईप्सा की जाती है कि एकमात्र मध्यस्थ विधित: और/या वस्तुत: अपने कृत्यों का निष्पादन करने में असमर्थ हो गया है या अन्य कारणों से असम्यक् विलंब के बिना कार्य करने में असफल रहता है, तो व्यथित पक्षकार को अधिनियम, 1996 की धारा 2(ङ) के अधीन यथा परिभाषित संबंधित "न्यायालय" में समावेदन करना चाहिए । संबंधित न्यायालय को इस बात का न्यायनिर्णयन करना होगा कि क्या वास्तव में एकमात्र मध्यस्थ विधित: और वस्तुत: अपना कृत्य/अपने कृत्यों का निष्पादन करने में असफल हो गया है/हो गए हैं या अन्य कारणों से वह असम्यक् विलंब के बिना कार्य करने में असफल रहा है । ऐसे किसी विवाद को क्यों न्यायालय के समक्ष उठाया जाना चाहिए, इसका कारण यह है कि धारा 14(1)(क) में वर्णित घटनाओं को एकमात्र मध्यस्थ की एक निरर्हता होना कहा जा सकता है और इसलिए ऐसे किसी विवाद/संविवाद का न्यायनिर्णयन संबंधित न्यायालय द्वारा किया जाएगा, जैसा कि अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन उपबंधित है । जहां तक मध्यस्थ के आदेश की समाप्ति और/या धारा 15(1)(क) जैसे अन्य उपबंधों में वर्णित कार्यवाहियों, जहां वह किसी कारण से अपने पद से हट जाता है या पक्षकारों के करार द्वारा या उसके अनुसरण में समाप्त हो जाता है, का संबंध है, विवाद को संबंधित न्यायालय के समक्ष उठाए जाने की आवश्यकता नहीं है । उदाहरण के लिए, जहां एकमात्र मध्यस्थ स्वयं किसी कारण से अपने पद से हट जाता है या जब दोनों पक्षकार

मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने और मध्यस्थ के प्रतिस्थापन के लिए सहमत हो जाते हैं, तो उसके पश्चात् आगे कोई संविवाद नहीं रह जाता है चाहे या तो एकमात्र मध्यस्थ स्वयं अपने पद से हट गया हो और/या पक्षकारों ने स्वयं मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने और मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने का करार किया हो । इस प्रकार, ऐसे किसी विवाद को न्यायालय के समक्ष उठाने का कोई प्रश्न नहीं है । अत: विधानमंडल ने जानबूझकर यह उपबंध किया है कि मध्यस्थ के आदेश को धारा 14(1)(क) के अधीन समाप्त करने के विषय में विवाद को केवल "न्यायालय" के समक्ष उठाया जाएगा । अत: जब कभी यह विवाद और/या संविवाद है कि मध्यस्थ के आदेश को धारा 14(1)(क) में वर्णित आधारों पर समाप्त किया जाना चाहिए, तो ऐसा कोई संविवाद/ विवाद केवल संबंधित "न्यायालय" के समक्ष उठाया जाना चाहिए और अधिनियम, 1996 की धारा 2(ङ) के अधीन यथा परिभाषित संबंधित "न्यायालय" द्वारा विनिश्चय किए जाने के पश्चात् अंततोगत्वा यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि मध्यस्थ के आदेश को समाप्त किया जाता है, तो उसके पश्चात् तद्नुसार मध्यस्थ को प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए, वह भी उन नियमों के अनुसार जो मध्यस्थ की आरंभिक नियुक्ति को लागू थे । अत: प्रसामान्यत: और साधारणत:, उसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए जिसका उस एकमात्र मध्यस्थ की नियुक्ति के समय अनुसरण किया गया था, जिसके आदेश को समाप्त किया जाता है और/या जिसे प्रतिस्थापित किया जाता है ।

7. अब अगला प्रश्न जो इस न्यायालय के विचार के लिए उत्पन्न होता है, यह है कि क्या किसी मामले में जहां पक्षकारों ने स्वयं विवाद को माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया हो और पारस्परिक सम्मति से एकमात्र मध्यस्थ को नियुक्त और/या नामनिर्देशित किया हो और जब एक बार मध्यस्थ को नियुक्त कर दिया जाता है तो कोई माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए किसी माध्यस्थम् करार और संविदा के अभाव में मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने के लिए और मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने के लिए अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन संधार्य होगा या नहीं ।

7.1 यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत मामले में मध्यस्थ के आदेश को इस आधार पर समाप्त करने के लिए कि उसका आदेश अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) को दृष्टिगत करते हुए समाप्त हो गया था, अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन आवेदन पहले ही संबंधित न्यायालय के समक्ष लंबित था ।

7.2 जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, अधिनियम, 1996 की धारा 11(5) के अधीन और धारा 11(6) के अधीन नियुक्त किए जाने वाले मध्यस्थ के बीच एक अंतर और विभेद है । जैसा कि ऊपर मत व्यक्त किया गया है, पक्षकारों के बीच लिखित में किसी माध्यस्थम् करार के अभाव में भी, पक्षकार सम्मति से विवाद को माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट कर सकते हैं और पारस्परिक सम्मति से एकमात्र मध्यस्थ/मध्यस्थों को नियुक्त कर सकते हैं और पक्षकार किसी लिखित करार के अभाव में भी मध्यस्थ या मध्यस्थों को नियुक्त करने की किसी प्रक्रिया पर पारस्परिक रूप से सहमत हो सकते हैं । ऐसी किसी स्थिति में और उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी करार के न होने पर, व्यथित पक्षकार मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए धारा 11 की उपधारा 5 के अधीन उच्च न्यायालय में समावेदन कर सकता है और ऐसी स्थिति में धारा 11 की उपधारा (5) लागू होगी । तथापि, जहां पक्षकारों द्वारा करार पाई गई नियुक्ति प्रक्रिया पर एक लिखित करार है और मध्यस्थ या मध्यस्थों को नियुक्त करने में असफल रहे हैं, तो उस दशा में धारा 11 की उपधारा (6) लागू होगी और व्यथित पक्षकार मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (6) के अधीन उच्च न्यायालय में समावेदन कर सकता है । अत: अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन केवल उस मामले में संधार्य होगा, जहां माध्यस्थम् करार और पक्षकारों द्वारा करार पाई गई नियुक्ति प्रक्रिया अंतर्विष्ट करते हुए कोई लिखित करार और/या संविदा है, और वहां अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन संधार्य होगा । अन्यथा, अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन संधार्य नहीं होगा ।

7.3 प्रस्तुत मामले में, पक्षकार स्वयं मध्यस्थ की नियुक्ति की

प्रक्रिया पर सहमत हुए थे और पारस्परिक सम्मति से एक मध्यस्थ को नियुक्त और नामनिर्देशित किया था । इसलिए अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन कतई संधार्य नहीं था ।

8. अन्यथा भी, जब एकबार पारस्परिक सम्मति से मध्यस्थ को नियुक्त किया गया था और यह अभिकथन किया गया था कि एकमात्र मध्यस्थ का आदेश अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) को ध्यान में रखते हुए समाप्त हो गया था, तो अधिनियम की धारा 14(1)(क) को ध्यान में रखते हुए मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने के लिए अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन संधार्य नहीं होगा । जब एक बार मध्यस्थ की नियुक्ति कर दी जाती है, तो यह विवाद कि क्या मध्यस्थ का आदेश अधिनियम की धारा 14(1)(क) में उपवर्णित आधारों पर समाप्त हो गया है, अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन आवेदन पर विनिश्चित नहीं किया जाएगा । ऐसे किसी विवाद को अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन आवेदन पर विनिश्चित नहीं किया जा सकता है और व्यथित पक्षकार को अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (2) के अनुसार संबंधित "न्यायालय" में समावेदन करना चाहिए । **एंट्रिक्स कार्पोरेशन लि.** (उपर्युक्त) वाले मामले के पैरा 31 और 33 में निम्नलिखित मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "31. मामला इतना जटिल नहीं है, जितना यह प्रतीत होता है और हमारे मत में, जब एक बार देवास द्वारा माध्यस्थम् करार को प्रतिसंहृत कर लिया गया था और उसके द्वारा एक नामनिर्देशिती मध्यस्थ भी नियुक्त कर दिया गया था, तो याची द्वारा दूसरी बार माध्यस्थम् करार को प्रतिसंहृत नहीं किया जा सकता था, जो प्रत्यर्थी द्वारा की गई नियुक्ति से पूरी तरह अवगत था । इससे एक असामान्य परिस्थिति पैदा हो जाएगी यदि एक बार की गई मध्यस्थ की नियुक्ति को अन्य पक्षकार द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आरंभ की गई पश्चात्वर्ती कार्यवाही में भी प्रश्नगत किया जा सकता हो । हमारे मत में, जबकि याची देवास की प्रेरणा पर मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती देने के लिए निश्चित रूप से हकदार था, तो वह ऐसा अधिनियम, 1996 की

धारा 11(6) के अधीन किसी स्वतंत्र कार्यवाही के द्वारा नहीं कर सकता था । जबकि अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन किसी मध्यस्थ को नियुक्त करने की शक्ति मुख्य न्यायमूर्ति में निहित की गई है, तो ऐसी नियुक्ति को इस अधिनियम की धारा 13 के अधीन प्रश्नगत किया जा सकता है । अधिनियम, 1996 की धारा 11 के अधीन किसी कार्यवाही में, मुख्य न्यायमूर्ति माध्यस्थम् करार की कवायद में पहले ही नियुक्त किए गए मध्यस्थ को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है ।

33. अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (6) में पूर्णत: स्पष्ट रूप से उपबंधित है कि जहां पक्षकार उनके द्वारा किसी करार पाई गई प्रक्रिया के निबंधनों के अनुसार कार्य करने में असफल रहते हैं, तो पक्षकारों में से किसी पक्षकार द्वारा उपधारा (6) के उपबंधों का अवलंब लिया जा सकता है । जहां करार के निबंधनों के अनुसार, इसके पक्षकारों में से किसी पक्षकार द्वारा आईसीसी नियमों के अधीन माध्यस्थम् खंड का पहले ही अवलंब लिया गया है, तो उपधारा (6) के उपबंधों का पुन: अवलंब नहीं लिया जा सकता है और यदि अन्य पक्षकार करार के निबंधनों के अनुसार मध्यस्थ की नियुक्ति से असंतुष्ट या व्यथित है, तो उसके लिए उपचार अधिनियम, 1996 की धारा 13 के अधीन आवेदन द्वारा और उसके पश्चात् धारा 34 के अधीन होगा ।"

9. पूर्वोक्त विनिश्चय का **एस. पी. सिंगला कंस्ट्रक्शंस प्राइवेट लि.** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चय में अनुसरण करते हुए इस न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया था कि जब एक बार मध्यस्थ को करार के खंड 65 के अनुसार (उस मामले में) नियुक्त किया गया था और विधि के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् करार का दूसरी बार अवलंब नहीं लिया जा सकता था ।

9.1 अब जहां तक प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा **एसीसी लि.** (उपर्युक्त) और **उत्तर प्रदेश राज्य**

ब्रिज कार्पोरेशन लि. (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का लिए गए अवलंब का संबंध है, पूर्वोक्त विनिश्चयों में इस न्यायालय द्वारा इस आशय के बारे में अधिकथित की गई विधि की स्थिति के विषय में कोई विवाद नहीं है कि अधिनियम, 1996 की धारा 14 और 15 में यथा वर्णित घटनाओं में से किसी घटना की दशा में मध्यस्थ का आदेश समाप्त हो जाएगा । तथापि, प्रश्न यह है कि ऐसे मामले में जहां मध्यस्थ के आदेश को अधिनियम की धारा 14(1)(क) में उपवर्णित आधार पर समाप्त किए जाने पर कोई विवाद/संविवाद है, तो क्या ऐसे किसी विवाद को अधिनियम की धारा 2(ङ) के अधीन परिभाषित संबंधित "न्यायालय" के समक्ष उठाया जाना होगा या ऐसे विवाद पर अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन आवेदन पर विचार किया जा सकता है ? पूर्वोक्त विनिश्चयों में इस न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई संविवाद नहीं उठाया गया था, इसलिए इस विवाद्यक का विनिश्चय करते हुए कि क्या अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन वर्णित आधार पर मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने के विवाद्यक को अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) या धारा 11(6) के अधीन विनिश्चित किया जा सकता है, पूर्वोक्त विनिश्चयों से प्रत्यर्थियों को कोई सहायता नहीं मिलेगी और/या ये विनिश्चय प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू नहीं होंगे ।

10. यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत मामले में जब इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 और 3 की प्रेरणा पर अधिनियम की धारा 14(1)(क) के अधीन एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने के लिए अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन कार्यवाहियां संबंधित न्यायालय के समक्ष पहले ही लंबित थीं जब प्रत्यर्थी सं. 1 ने अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन आवेदन प्रस्तुत किया था और न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 14(2) के अधीन कार्यवाही में ऐसा विवाद चल रहा था ।

11. पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया जाता है :–

(i) अधिनियम, 1996 की धारा 11(5) और धारा (6) के बीच

एक अंतर और विभेद है ;

(ii) ऐसी दशा में, जहां मध्यस्थ या मध्यस्थों को नियुक्त करने की प्रक्रिया पर पक्षकारों के बीच कोई लिखित करार नहीं है, वहां पक्षकार पारस्परिक सम्मति और/या करार द्वारा किसी प्रक्रिया पर सहमत होने के लिए स्वतंत्र हैं और विवाद को किसी एकमात्र मध्यस्थ को/मध्यस्थों को निर्दिष्ट किया जा सकता है, जिसे पारस्परिक सम्मति द्वारा नियुक्त किया जा सकता है और धारा 11(2) में निर्दिष्ट किसी करार के न होने पर अधिनियम की धारा 11(5) लागू होगी और ऐसी किसी स्थिति में मध्यस्थ या मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए आवेदन अधिनियम की धारा 11(5) के अधीन संधार्य होगा न कि अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन ;

(iii) ऐसे मामले में, जहां माध्यस्थम् करार अंतर्विष्ट करते हुए एक लिखित करार और/या संविदा है और पक्षकारों द्वारा नियुक्ति और प्रक्रिया के बारे में करार किया गया है, वहां अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन आवेदन संधार्य होगा और उच्च न्यायालय या उसका नामनिर्देशिती अधिनियम की धारा 11(6)(क) से (ग) में प्रकट होने वाली घटनाओं में से किसी की दशा में मध्यस्थ या मध्यस्थों को नियुक्त कर सकता है ;

(iv) जब एक बार मध्यस्थ को विवाद निर्दिष्ट कर दिया जाता है और पक्षकारों द्वारा एकमात्र मध्यस्थ को पारस्परिक सम्मति से नियुक्त किया जाता है तथा मध्यस्थ/मध्यस्थों को इस प्रकार नियुक्त किया जाता है/किए जाते हैं, तो माध्यस्थम् करार का दूसरी बार अवलंब नहीं लिया जा सकता है ;

(v) ऐसे मामले में, जहां धारा 14(1)(क) में वर्णित आधार पर मध्यस्थ के आदेश को समाप्त किए जाने का विवाद/संविवाद है, तो ऐसे किसी विवाद को अधिनियम, 1996 की धारा 2(ड़) के अधीन परिभाषित "न्यायालय" के समक्ष उठाया जाना चाहिए और ऐसे किसी विवाद को अधिनियम, 1996 की धारा

11(6) के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर विनिश्चित नहीं किया जा सकता है ।

12. अब अगला प्रश्न, जो इस न्यायालय के विचार के लिए उत्पन्न होता है, यह है कि क्या विद्वान् विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन को नामंजूर करके न्यायोचित किया था, जो अधिनियम की धारा 14 के अधीन फाइल किए गए आवेदनों को नामंजूर करने के लिए फाइल किया गया था । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन में किए गए प्रकथनों का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है और यह विवादग्रस्त नहीं है कि अधिनियम की धारा 14(2) के अधीन आवेदन को इस आधार पर नामंजूर करने की ईप्सा की गई थी कि मध्यस्थ की ओर से कोई असम्यक् विलंब नहीं हुआ था और इसलिए उसके आदेश को अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन समाप्त नहीं किया जाना चाहिए । तथापि, ऐसे किसी विवाद का न्यायनिर्णयन गुणागुण के आधार पर उस संबंधित न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए जिसके समक्ष अधिनियम की धारा 14(2) के अधीन कार्यवाहियां आरंभ की गई थीं और अधिक से अधिक इसे प्रतिरक्षा कहा जा सकता है, जिसका न्यायनिर्णयन संबंधित न्यायालय द्वारा किया जाना था । विधि की स्थिर स्थिति के अनुसार, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन का विनिश्चय करने के प्रक्रम पर केवल आवेदन/विवादपत्र में के प्रकथनों और अभिकथनों पर न कि लिखित कथन और/या आवेदन के उत्तर और/या प्रतिरक्षा पर विचार किया जाना चाहिए । अत: विद्वान् विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन को ठीक ही खारिज किया था ।

13. पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से, उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश असंधार्य है और इसे अभिखंडित और अपास्त किया जाना चाहिए तथा तद्नुसार इसे अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । यह

संविवाद और/या विवाद की क्या अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अधीन एकमात्र मध्यस्थ का आदेश समाप्त हो गया था या नहीं, इस पर अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर न्यायालय द्वारा विचार किया जाएगा । यह बताया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश फाइल करने के पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 1 और 3 ने अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन अपने आवेदनों को प्रत्याहृत कर लिया है । पक्षकारों के बीच सारभूत न्याय करने के लिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रत्यर्थी सं. 1 और 3 उपचार विहिन न रहें, हम यह निदेश देते हैं कि प्रत्यर्थी सं. 1 और 3 द्वारा अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन संबंधित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया आवेदन पुनर्जीवित हो जाएगा/हो जाएंगे । अब वह संबंधित न्यायालय, जिसके समक्ष अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन आवेदन/आवेदनों को फाइल किया था/किए गए थे, उन पर विधि के अनुसार और उनके स्वयं के गुणागुण के आधार पर शीघ्रतापूर्वक और अधिमानत: इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से चार माह की अवधि के भीतर विचार करेगा । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि अंततोगत्वा यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को अधिनियम, 1996 की धारा 14(1)(क) के अनुसार समाप्त किया जाता है और विशिष्ट रूप से इस आधार पर कि माध्यस्थम् कार्यवाहियों का समापन करने में मध्यस्थ की ओर से असम्यक् विलंब हुआ था, तो मध्यस्थ को प्रतिस्थापित किया जाए और उसी प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए एक नए मध्यस्थ की नियुक्ति की जाए जो वर्तमान एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करते समय पहले अनुसरण किया गया था । यदि पक्षकार एकमात्र मध्यस्थ के नाम पर सहमत नहीं होते हैं, तो व्यथित पक्षकार अधिनियम की धारा 11(5) के अधीन किसी मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए समुचित न्यायालय में समावेदन कर सकता है । यदि अधिनियम की धारा 14(2) के अधीन आवेदन (आवेदनों) को खारिज किया जाता है/किए जाते हैं और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि एकमात्र मध्यस्थ के आदेश को समाप्त नहीं किया जाता है और उसकी ओर से कोई असम्यक् विलंब नहीं हुआ था, ऐसी

स्थिति में एकमात्र मध्यस्थ माध्यस्थम् कार्यवाहियों का समापन करेगा और न्यायालय के विनिश्चय से 9 माह की अवधि के भीतर पंचाट की घोषणा करेगा, जो अधिनियम, 1996 की धारा 14(2) के अधीन किया जाएगा । उच्च न्यायालय द्वारा 2015 के माध्यस्थम् मामला सं. 29 और 2017 के पुनरीक्षण आवेदन सं. 655 में पारित किए गए आक्षेपित निर्णय (निर्णयों) और आदेश (आदेशों) को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । तदनुसार, पूर्वोक्त आदेशों से उद्भूत अपीलों को तद्द्वारा मंजूर किया जाता है । तथापि, 2010 की रिट याचिका सं. 11258 और 2010 की रिट याचिका सं. 11259 में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन को नामंजूर करते हुए पारित किए गए आदेश/आदेशों की पुष्टि करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की गई अपीलों को तद्द्वारा खारिज किया जाता है । मामले के तथ्यों में, खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाएगा ।

अपीलें भागत: मंजूर की गईं ।

जस.

[2022] 2 उम. नि. प. 251

ए. जी. पेरारीवलन

बनाम

राज्य मार्फत पुलिस अधीक्षक, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो/ एसआईटी/एमडीएमए, चेन्नई, तमिलनाडु और एक अन्य

[2022 की दांडिक अपील सं. 833, 834 और 835]

18 मई, 2022

न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव, न्यायमूर्ति बी. आर. गवई और न्यायमूर्ति ए. एस. बोपन्ना

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 432(7) [सपठित भारत का संविधान, 1950 का अनुच्छेद 72, 73 और 161] – दंडादेशों का निलंबन या परिहार करने की शक्ति – समुचित सरकार – भारत के पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या के सिद्धदोष अभियुक्त के दंडादेश के परिहार के लिए राज्य मंत्रिमंडल द्वारा प्रस्ताव पारित करके राज्यपाल को भेजा जाना – राज्यपाल द्वारा उक्त प्रस्ताव पर कोई विनिश्चय किए बिना मामले को राष्ट्रपति के पास प्रेषित किया जाना – राज्य मंत्रिमंडल की सिफारिश को राष्ट्रपति को निर्देशित करने की राज्यपाल की शक्ति – चूंकि भारत के संविधान में सन्निविष्ट कैबिनेट शासन प्रणाली में राज्यपाल राज्य का सांविधानिक या औपचारिक मुखिया होता है और वह संविधान द्वारा उसे प्रदत्त सभी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग मंत्रिमंडल की सहायता और सलाह से करने के लिए आबद्ध है, इसलिए राज्यपाल द्वारा अनुच्छेद 161 के अधीन अपनी शक्तियों या कृत्यों का प्रयोग न करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है और इसके अतिरिक्त दंडादेश की माफी के लिए अर्जी में विनिश्चय करने में अत्यधिक विलंब होने, अपीलार्थी द्वारा 32 वर्ष का कारावास भुगत लेने, जेल में उसके आचरण से संबंधित कोई शिकायत न होने, पैरोल पर छोड़े जाने के

दौरान उसका आचरण संतोषजनक पाए जाने, चिकित्सा रिपोर्ट के अनुसार उसका स्वास्थ्य ठीक न होने की बात को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए उसे रिहा करना उचित होगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी को भारत के भूतपूर्व प्रधान मंत्री, श्री राजीव गांधी की हत्या के लिए भारतीय दंड संहिता, आयुध अधिनियम, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, पासपोर्ट अधिनियम, विदेशियों विषयक अधिनियम, भारतीय बेतार तारयांत्रिकी अधिनियम तथा आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम (संक्षेप में 'टाडा') के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था । उसे पदाभिहित टाडा न्यायालय द्वारा मृत्यु दंडादेश दिया गया था । उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 11 मई, 1999 के निर्णय द्वारा अपीलार्थी पर अधिरोपित दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा गया था । तथापि, टाडा के अधीन दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया गया था । अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई पुनर्विलोकन याचिका को तारीख 8 अक्तूबर, 1999 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था । अपीलार्थी के साथ-साथ तीन अन्य अभियुक्तों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन तमिलनाडु के राज्यपाल के समक्ष दया याचिकाएं फाइल की थीं, जो तारीख 27 अक्तूबर, 1999 को नामंजूर कर दी गई थीं । तमिलनाडु उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए एक आदेश के अनुसरण में राज्यपाल द्वारा अपीलार्थी की दया याचिका पर पुनर्विचार किया गया था और उसे तारीख 25 अप्रैल, 2000 को पुन: नामंजूर कर दिया गया था । अपीलार्थी ने संविधान के अनुच्छेद 72 के अधीन भारत के राष्ट्रपति के समक्ष एक दया याचिका फाइल की थी और उसे भी तारीख 12 अगस्त, 2011 को नामंजूर कर दिया गया था । इससे व्यथित होकर, मद्रास उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका फाइल की गई थी । अपीलार्थी द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई उक्त रिट याचिका को तारीख 1 मई, 2012 के आदेश द्वारा उच्चतम न्यायालय में अंतरित किया गया था । उसके पश्चात्, उच्चतम

न्यायालय द्वारा तारीख 18 फरवरी, 2014 को अपीलार्थी के मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघुकृत कर दिया गया था । अपीलार्थी द्वारा दंडादेश के परिहार के लिए फाइल की गई अर्जी पर तमिलनाडु मंत्रिमंडल द्वारा अपीलार्थी को छोड़े जाने की सिफारिश करते हुए तारीख 9 सितंबर, 2018 को एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसे राज्यपाल को भेजा गया था । राज्यपाल द्वारा उक्त प्रस्ताव पर कोई विनिश्चय किए बिना इसे राष्ट्रपति के विनिश्चय के लिए निर्देशित कर दिया गया । इसी बीच, अपीलार्थी ने इस हत्या के लंबित अन्वेषण को प्रभावी रूप से मानीटर करने के लिए अनुरोध करते हुए पदाभिहित टाडा न्यायालय, चेन्नई के समक्ष एक दांडिक प्रकीर्ण आवेदन फाइल किया । टाडा न्यायालय द्वारा तारीख 10 दिसंबर, 2013 को उक्त आवेदन खारिज कर दिया गया, जिसके विरुद्ध अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष एक दांडिक मूल आवेदन फाइल करके समावेदन किया । एक अन्य दांडिक मूल आवेदन फाइल किया गया था, जिसमें लंबित अन्वेषण को शीघ्रतापूर्वक पूर्ण करने और उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्येक दो माह में एक बार एक प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल करने के लिए केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो को निदेश देने की ईप्सा की गई थी । उच्च न्यायालय ने तारीख 6 मार्च, 2015 के अलग-अलग आदेशों द्वारा दोनों आवेदनों को यह राय व्यक्त करते हुए खारिज कर दिया कि अपीलार्थी को उच्चतम न्यायालय में समावेदन करना चाहिए । अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए उक्त आदेशों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय ने यह पाया कि इन अपीलों में जिस एकमात्र मुद्दे पर विचार किया जाना अपेक्षित है, वह राज्यपाल द्वारा अपीलार्थी के दंडादेश के परिहार पर राज्य मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश पर विनिश्चय किए बिना इसे तारीख 25 जनवरी, 2021 को भारत के राष्ट्रपति को किए गए निर्देश की शुद्धता के बारे में था । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – हमारे संविधान में यथा समाविष्ट सरकार की मंत्रिमंडल

(कैबिनेट) शासन प्रणाली के अधीन, राज्यपाल राज्य का सांविधानिक या औपचारिक प्रधान है और उन क्षेत्रों को छोड़कर, जिनमें राज्यपाल से संविधान द्वारा या संविधान के अधीन यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कर्तव्यों का प्रयोग स्व-विवेकानुसार करे, वह संविधान के अधीन या संविधान द्वारा अपने को प्रदत्त अपनी सभी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सहायता और सलाह पर करता है । जहां कहीं संविधान, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा किसी शक्ति या कृत्य के प्रयोग के लिए राष्ट्रपति या राज्यपाल के समाधान की अपेक्षा करता है, उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 123, 213, 311(2) परंतुक (ग), 317, 352(1), 356 और 360, वहां संविधान द्वारा अपेक्षित समाधान राष्ट्रपति या राज्यपाल का व्यक्तिगत समाधान नहीं है, बल्कि कैबिनेट शासन प्रणाली के अधीन सांविधानिक अर्थ में राष्ट्रपति या राज्यपाल का समाधान है । वह समाधान मंत्रिपरिषद् का समाधान है, जिसकी सहायता और सलाह पर राष्ट्रपति या राज्यपाल सामान्यत: अपनी-अपनी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करते हैं । इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि स्पष्ट और सुव्यक्त है । राज्य के मंत्रिमंडल की सलाह अनुच्छेद 161 के अधीन दंडादेशों के लघुकरण/परिहार से संबंधित विषयों में राज्यपाल पर आबद्धकर है । संविधान के अधीन ऐसा कोई उपबंध इस न्यायालय को नहीं बताया गया है और न ही राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा की गई किसी सिफारिश को भारत के राष्ट्रपति को निर्देशित करने के लिए राज्यपाल की शक्ति के स्रोत के बारे में कोई समाधानप्रद उत्तर दिया गया है । प्रस्तुत मामले में, राज्यपाल को राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश को भारत के राष्ट्रपति के पास नहीं भेजा जाना चाहिए था । ऐसा कार्य ऊपर वर्णित सांविधानिक स्कीम के विपरीत है । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा सिफारिश तारीख 9 सितंबर, 2018 को की गई थी, जो राज्यपाल के समक्ष लगभग अढ़ाई वर्षों तक कोई विनिश्चय किए बिना लंबित पड़ी रही थी । केवल तब जब इस न्यायालय ने विनिश्चय करने में विलंब करने के कारण के बारे में जांच-पड़ताल आरंभ की, राज्यपाल ने अपीलार्थी के दंडादेश के परिहार के लिए राज्य सरकार द्वारा की गई सिफारिश को भारत के राष्ट्रपति को प्रेषित कर दिया था । इस

न्यायालय को राज्यपाल की शक्तियों के प्रयोग और उसके पद के कर्तव्यों के संपादन के विषय में या उसके द्वारा ऐसी शक्तियों और कर्तव्यों के प्रयोग और संपादन करते हुए किए गए किसी कृत्य या तात्पर्यित रूप से किए जाने वाले कृत्य के लिए राज्यपाल की उन्मुक्ति का पूरी तरह से भान है । तथापि, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है, इस न्यायालय को अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल के आदेशों का न्यायिक पुनर्विलोकन करने की शक्ति है, जिन्हें कतिपय आधारों पर आक्षेपित किया जा सकता है । (पैरा 15, 16, 19 और 20)

अपीलार्थी अपनी गिरफ्तारी के समय पर 19 वर्ष का था और 32 वर्ष कैद में रहा है, जिसमें से उसने 16 वर्ष मृत्यु के साये में और 29 वर्ष एकांत कारावास में व्यतीत किए हैं । जेल में उसके आचरण के संबंध में कोई शिकायत नहीं रही है । दो अवसरों पर जब अपीलार्थी को पैरोल पर छोड़ा गया था, उसके आचरण या छोड़े जाने की किसी शर्त को भंग करने के संबंध में कोई शिकायत नहीं थी । अपीलार्थी की ओर से फाइल किए गए चिकित्सा अभिलेखों से यह उपदर्शित होता है कि वह पुराने रोगों से ग्रस्त है । जेल में उसके अच्छे व्यवहार के अतिरिक्त, अपीलार्थी ने स्वयं को शिक्षित भी किया है और अपना +2, एक अस्नातक डिग्री, एक स्नातकोत्तर डिग्री, एक डिप्लोमा और 8 प्रमाणपत्र पाठ्यक्रमों को सफलतापूर्वक पूर्ण किया है । इस बात को देखते हुए कि अनुच्छेद 161 के अधीन उसकी अर्जी उसके दंडादेश के परिहार के लिए राज्य मंत्रिमंडल की सिफारिश के बाद अढ़ाई वर्ष लंबित रही थी और राज्यपाल द्वारा किए गए निर्देश के बाद भी एक वर्ष से ज्यादा लंबित चलती रही थी, यह न्यायालय मामले को राज्यपाल के विचार के लिए प्रतिप्रेषित करना उचित नहीं समझता है । किसी अन्य निर्हरता के अभाव में और इस मामले के आपवादिक तथ्यों और परिस्थितियों में, संविधान के अनुच्छेद 132 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए हम यह निदेश देते हैं कि यह समझा जाएगा कि अपीलार्थी ने 1991 के अपराध सं. 329 के संबंध में दंडादेश भुगत लिया है । अपीलार्थी को, जो जमानत पर है, तुरंत स्वतंत्र कर दिया जाए । (पैरा 28)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2016] (2016) 8 एस. सी. सी. 1 :
नाबम रेबिया एंड बामंग फेलिक्स बनाम
उप सभापति, अरुणाचल प्रदेश विधानसभा ; 16

[2016] (2016) 7 एस. सी. सी. 1 :
भारत संघ बनाम **श्रीहरन** ; 3, 23

[2006] (2006) 8 एस. सी. सी. 161 :
ईपुरु सुधाकर बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ; 20

[2004] (2004) 8 एस. सी. सी. 788 :
मध्य प्रदेश विशेष पुलिस स्थापन बनाम
मध्य प्रदेश राज्य ; 11, 21, 22

[1981] [1981] 4 उम. नि. प. 165 = (1981)
1 एस. सी. सी. 161 :
मारू राम बनाम **भारत संघ** ; 17

[1975] [1975] 1 उम. नि. प. 357 = (1974)
2 एस. सी. सी. 831 :
शमशेर सिंह बनाम **पंजाब राज्य** ; 15, 18

[1955] [1955] 2 एस. सी. आर. 225 :
राय साहब राम जवाया कपूर बनाम **पंजाब राज्य** । 14

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2022 की दांडिक अपील सं. 833-834 (इसके साथ 2022 की दांडिक अपील सं. 835.

2015 के दांडिक मूल आवेदन सं. 5073 में 2015 के दांडिक मूल आवेदन सं. 4084 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 6 मार्च, 2015 को पारित किए गए अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री गोपाल शंकरनारायण, ज्येष्ठ

अधिवक्ता, प्रभु रामसुब्रमण्यन, के. पारी वंधन, रघुनाथ सेतुपति बी., विष्णु उन्नीकृष्णन, (सुश्री) शिवानी विज और (सुश्री) प्रिया आर.

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री तुषार मेहता, महा-सालिसिटर, के. एन. नटराज, अपर महा सालिसिटर, अशोक पाणिग्रही, (सुश्री) वंशजा शुक्ला, (सुश्री) रेखा पांडेय, वत्सल जोशी, शारथ नांबियार, विनायक शर्मा, सुशील तिवारी, (सुश्री) इंदिरा भाकर, टी. ए. खान, (सुश्री) कीर्ति दुआ, अरविंद कुमार शर्मा, बी. वी. बलराम दास, आनंद सेल्वम, थिरुमुरुग्न, एस. मुत्थु कृष्णन, के. मायल सामी, पी. सोमा सुंदरम, राकेश द्विवेदी, वी. कृष्णामूर्ति, अमित आनंद तिवारी, डा. जोसफ अरिस्टोटल एस., एकलव्य द्विवेदी, (सुश्री) मैरी मित्जी, (सुश्री) देवयानी गुप्ता, (सुश्री) तान्वी आनंद, (सुश्री) नूपुर शर्मा, शोभित द्विवेदी और संजीव कुमार माहरा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव ने दिया ।

न्या. राव – इजाजत दी गई ।

अपीलार्थी श्रीपेरुमबुदूर पुलिस थाने में रजिस्ट्रीकृत 1991 के अपराध मामला सं. 329 में तारीख 21 मई, 1991 को भारत के भूतपूर्व प्रधान मंत्री, श्री राजीव गांधी की हत्या के लिए अभियुक्त सं. 18 है । अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में भारतीय दंड संहिता), आयुध अधिनियम, 1951, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908, पासपोर्ट अधिनियम, 1967, विदेशियों विषयक अधिनियम, 1946, भारतीय बेतार तारयांत्रिकी अधिनियम, 1933 तथा आतंकवादी और

विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 (संक्षेप में 'टाडा') के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था । उसे पदाभिहित टाडा न्यायालय द्वारा मृत्यु दंडादेश दिया गया था । इस न्यायालय ने तारीख 11 मई, 1999 के निर्णय द्वारा अपीलार्थी पर अधिरोपित दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा था । तथापि, टाडा के अधीन दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया गया था । अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई पुनर्विलोकन याचिका को तारीख 8 अक्तूबर, 1999 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था । अपीलार्थी के साथ-साथ तीन अन्य अभियुक्तों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन तमिलनाडु के राज्यपाल के समक्ष दया याचिकाएं फाइल की थीं, जो तारीख 27 अक्तूबर, 1999 को नामंजूर कर दी गई थीं । तमिलनाडु उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए एक आदेश के अनुसरण में राज्यपाल द्वारा अपीलार्थी की दया याचिका पर पुनर्विचार किया गया था और उसे तारीख 25 अप्रैल, 2000 को पुन: नामंजूर कर दिया गया था । अपीलार्थी ने संविधान के अनुच्छेद 72 के अधीन भारत के राष्ट्रपति के समक्ष एक दया याचिका फाइल की थी और उसे भी तारीख 12 अगस्त, 2011 को नामंजूर कर दिया गया था । इससे व्यथित होकर, मद्रास उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका फाइल की गई थी । अपीलार्थी द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई उक्त रिट याचिका को तारीख 1 मई, 2012 के आदेश द्वारा इस न्यायालय में अंतरित किया गया था । उसके पश्चात्, इस न्यायालय द्वारा तारीख 18 फरवरी, 2014 को अपीलार्थी के मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघुकृत कर दिया गया था ।

2. इस बात को दृष्टिगत करते हुए कि अपीलार्थी ने 23 वर्ष का दंडादेश भुगत लिया है, तमिलनाडु राज्य ने अपीलार्थी पर अधिरोपित आजीवन कारावास के दंडादेश के परिहार के लिए भारत सरकार को तीन दिनों के भीतर अपना मत देने का अनुरोध करते हुए प्रस्ताव भेजा । उक्त प्रस्ताव दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'दंड प्रक्रिया संहिता') की धारा 435 को ध्यान में रखते हुए भेजा गया था, जिसके अनुसार केंद्रीय सरकार से सलाह किया जाना आवश्यक था क्योंकि मामले का

अन्वेषण केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई) द्वारा किया गया था । इस न्यायालय द्वारा अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेश को आजीवन कारावास में लघुकृत करते हुए तारीख 18 फरवरी, 2014 को निपटाए गए मामलों में भारत संघ ने तुरंत दांडिक प्रकीर्ण याचिकाएं फाइल की थीं । इन याचिकाओं में, केंद्रीय सरकार ने अपीलार्थी को न छोड़ने के लिए तमिलनाडु राज्य को निदेश देने की ईप्सा की थी । इस न्यायालय द्वारा उक्त दांडिक प्रकीर्ण याचिकाओं में तारीख 20 फरवरी, 2014 को यथापूर्व स्थिति बनाए रखने का आदेश पारित किया गया था । अपीलार्थी के दंडादेश को लघुकृत करते हुए तारीख 18 फरवरी, 2014 के निर्णय के विरुद्ध भारत संघ द्वारा फाइल की गई पुनर्विलोकन याचिकाएं खारिज कर दी गई थीं ।

3. भारत संघ ने तारीख 24 फरवरी, 2014 को तमिलनाडु राज्य से प्राप्त हुई तारीख 19 फरवरी, 2014 की संसूचना और अपीलार्थी तथा कुछ अन्य अभियुक्तों पर अधिरोपित दंडादेश के लघुकरण/परिहार पर विचार करने के उसके विनिश्चय को अभिखंडित करने के लिए एक रिट याचिका फाइल की । इस रिट याचिका को, विचार के लिए सात प्रश्न विरचित करने के पश्चात्, तारीख 25 अप्रैल, 2014 के आदेश द्वारा इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ को निर्देशित किया गया था । इस न्यायालय ने तारीख 2 दिसंबर, 2015 के निर्णय द्वारा उन प्रश्नों का उत्तर दिया जो **भारत संघ** बनाम **श्रीहरन**[1] वाले मामले में विचार के लिए विरचित किए गए थे ।

4. अपीलार्थी ने अपने दंडादेश के परिहार के लिए तारीख 30 दिसंबर, 2015 को संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन एक याचिका फाइल की । अपीलार्थी को परिहार प्रदान करने के राज्य सरकार के प्रस्ताव को अभिखंडित करने के लिए भारत संघ द्वारा फाइल की गई रिट याचिका का इस न्यायालय द्वारा तारीख 6 सितंबर, 2018 को इस तथ्य पर विचार करते हुए निपटारा किया गया था कि अपीलार्थी द्वारा संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन एक अर्जी फाइल की गई है और

[1] (2016) 7 एस. सी. सी. 1.

संबंधित प्राधिकारी को यह स्वतंत्रता दी गई थी कि वह उक्त अर्जी का, जैसा वह ठीक समझे, निपटारा करे । तमिलनाडु मंत्रिमंडल द्वारा अपीलार्थी को छोड़े जाने की सिफारिश करते हुए तारीख 9 सितंबर, 2018 को एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसे राज्यपाल को भेजा गया था ।

5. इसी बीच, अपीलार्थी ने इस हत्या के लंबित अन्वेषण को प्रभावी रूप से मानीटर करने के लिए अनुरोध करते हुए पदाभिहित टाडा न्यायालय, चेन्नई के समक्ष एक दांडिक प्रकीर्ण आवेदन फाइल किया । टाडा न्यायालय द्वारा तारीख 10 दिसंबर, 2013 को उक्त आवेदन खारिज कर दिया गया, जिसके विरुद्ध अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष एक दांडिक मूल आवेदन फाइल करके समावेदन किया । एक अन्य दांडिक मूल आवेदन फाइल किया गया था जिसमें लंबित अन्वेषण को शीघ्रतापूर्वक पूर्ण करने और उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्येक दो माह में एक बार एक प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल करने के लिए केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो को निदेश देने की ईप्सा की गई थी । उच्च न्यायालय ने तारीख 6 मार्च, 2015 के अलग-अलग आदेशों द्वारा दोनों आवेदनों को यह राय व्यक्त करते हुए खारिज कर दिया कि अपीलार्थी को उच्चतम न्यायालय में समावेदन करना चाहिए । ये अपीलें उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 6 मार्च, 2015 को पारित किए गए उक्त आदेशों के विरुद्ध फाइल की गई हैं । अपीलार्थी द्वारा दंडादेश के निलंबन की ईप्सा करते हुए फाइल की गई दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 118421 में इस न्यायालय द्वारा नोटिस जारी किया गया था ।

6. इन अपीलों के लंबित रहने के दौरान इस न्यायालय को यह सूचित किया गया कि तमिलनाडु मंत्रिमंडल द्वारा अपीलार्थी को छोड़े जाने की सिफारिश करते हुए तारीख 9 सितंबर, 2018 को पारित किए गए प्रस्ताव पर राज्यपाल द्वारा कोई विनिश्चय नहीं किया गया है । इस न्यायालय ने तारीख 11 फरवरी, 2020 को तमिलनाडु राज्य की ओर से अपर महाधिवक्ता को मंत्रिमंडल की राज्यपाल को भेजी गई सिफारिश की प्रास्थिति पर अनुदेश प्राप्त करने के लिए निदेशित किया ।

पैरोल के लिए फाइल किए गए आवेदनों की सुनवाई के दौरान उच्च न्यायालय को यह सूचित किया गया था कि अपीलार्थी के दंडादेश के परिहार से संबंधित राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश पर राज्यपाल ने कोई विनिश्चय नहीं किया है, क्योंकि बहु-अनुशासनिक मानीटरिंग अभिकरण (एमडीएमए) की अंतिम रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई है । केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने तारीख 20 नवंबर, 2020 को इन अपीलों में एक शपथपत्र इस न्यायालय को यह सूचित करते हुए फाइल किया कि राज्यपाल द्वारा बहु-अनुशासनिक मानीटरिंग अभिकरण (एमडीएमए) की रिपोर्ट की ईप्सा करते हुए कोई अनुरोध नहीं किया गया था और अनुच्छेद 161 के अधीन फाइल की गई अर्जी को स्वयं इसके गुणागुण के आधार पर विनिश्चित किया जा सकता है ।

7. भारत के विद्वान् महा-सालिसिटर तारीख 21 जनवरी, 2021 को इस न्यायालय को यह सूचित करने के लिए हाजिर हुए कि अनुच्छेद 161 के अधीन फाइल की गई अर्जी पर राज्यपाल द्वारा आगे किसी विलंब के बिना विनिश्चय किया जाएगा । उसके पश्चात्, तारीख 4 फरवरी, 2021 को उप सचिव, गृह मंत्रालय द्वारा यह कथन करते हुए एक शपथपत्र फाइल किया गया था कि राज्यपाल ने तारीख 25 जनवरी, 2021 के आदेश द्वारा यह अवधारण किया था कि अनुच्छेद 161 के अधीन अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अर्जी का विनिश्चय करने के लिए समुचित प्राधिकारी भारत के राष्ट्रपति हैं और इसे तमिलनाडु मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश के साथ भारत के राष्ट्रपति को भेज दिया था ।

8. इस न्यायालय ने तारीख 9 मार्च, 2022 के आदेश द्वारा अपीलार्थी को इस तथ्य पर विचार करते हुए जमानत पर छोड़ दिया था कि अपीलार्थी ने 31 वर्ष से अधिक जेल में व्यतीत कर लिए हैं, यह कि जेल में उसका आचरण अच्छा था, उसने कई शैक्षणिक अर्हताएं अर्जित की हैं और उसका स्वास्थ्य खराब है ।

9. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल, श्री गोपाल शंकरनारायण ने यह दलील दी कि अपीलार्थी को परिहार प्रदान करने के लिए राज्य मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश पर विनिश्चय राज्यपाल

द्वारा किया जाना चाहिए था । राज्यपाल के पास राज्य मंत्रिमंडल की सिफारिश को भारत के राष्ट्रपति को निर्देशित करने की शक्ति नहीं है । उन्होंने यह दलील दी कि राज्य मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश राज्यपाल पर आबद्धकर है और वह स्वतंत्र विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकते । अधिक से अधिक, राज्यपाल राज्य मंत्रिमंडल को अपने विनिश्चय पर पुनर्विचार करने का अनुरोध कर सकते हैं किंतु उन्हें राज्य मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश को भारत के राष्ट्रपति को निर्देशित करने की अधिकारिता या शक्ति नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल मंत्रिपरिषद् की सहायता और सलाह पर शक्ति का प्रयोग करता है । यह भी दलील दी गई कि यदि इस तर्क को स्वीकार किया जाए कि भारत के राष्ट्रपति सक्षम प्राधिकारी हैं, तब आज की तारीख तक अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल द्वारा प्रदान की गई प्रत्येक क्षमा/निलंबन असंवैधानिक हो जाएंगे ।

10. तमिलनाडु राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल, श्री राकेश द्विवेदी ने यह तर्क देते हुए अपीलार्थी के आधार का समर्थन किया कि अनुच्छेद 161 से 163 की व्याप्ति को इस न्यायालय की एक से अधिक संविधान न्यायपीठ द्वारा स्पष्ट किया गया है, जिसके अनुसार जब तक संविधान द्वारा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित न किया गया हो, राज्यपाल मंत्रियों के मंत्रिमंडल के विनिश्चय द्वारा आबद्ध है । यदि मंत्रिमंडल की सलाह पर राज्यपाल द्वारा किया गया कोई विनिश्चय राज्य सरकार की अधिकारिता से परे होना पाया जाता है, तो इसे सदैव सांविधानिक न्यायालयों के समक्ष चुनौती दी जा सकती है । तथापि, राज्यपाल मंत्रिमंडल की सिफारिश में नुक्ता-चीनी करने के लिए सांविधानिक रूप से सशक्त नहीं है । उन्होंने आगे यह भी दलील दी कि संविधान में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो राज्यपाल को राज्य मंत्रिमंडल की सिफारिश को भारत के राष्ट्रपति के विनिश्चय के लिए निर्देशित करने के लिए समर्थ बनाता हो । राज्यपाल के ऐसे कार्य इस देश के संघीय ढांचे, जो हमारे संविधान की एक मूलभूत विशेषता है, के अतिक्रमण में होंगे ।

11. भारत के विद्वान् अपर महा-सालिसिटर, श्री के. एम. नटराज

ने यह दलील दी कि वर्तमान मामले में परिहार/लघुकरण के विषय में समुचित सरकार केंद्रीय सरकार है । उन्होंने **श्रीहरन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के कतिपय पैराग्राफों का समर्थन लेना चाहा और दलील दी कि राज्यपाल ने राज्य मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश को ठीक ही निर्देशित किया था क्योंकि केवल भारत के राष्ट्रपति ही अपीलार्थी के दंडादेश के परिहार/लघुकरण पर विनिश्चय कर सकते हैं । उन्होंने यह भी दलील दी कि राज्यपाल सदैव मंत्रिपरिषद् के सलाह से आबद्ध नहीं हैं और उक्त नियम के मान्यताप्राप्त अपवाद हैं, जहां राज्यपाल से स्वयं अपने विवेकानुसार कार्य करने की अपेक्षा की जाती है । उक्त प्रतिपादना के लिए, उन्होंने **मध्य प्रदेश विशेष पुलिस स्थापन** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उन अवसरों पर, जहां तथ्यों के आधार पर मंत्रिपरिषद् का पक्षपात स्पष्ट हो गया है और/या मंत्रिपरिषद् का विनिश्चय असंगत और सुसंगत कारकों पर विचार न करने पर आधारित होना दर्शित किया जाता है, वहां राज्यपाल द्वारा उस मामले के तथ्यों के आधार पर स्वयं अपने विवेकाधिकार से कार्य करना और मंजूरी प्रदान करना सही होगा । उन्होंने इस न्यायालय को इस बात के लिए राजी करने का प्रयत्न किया कि राज्य मंत्रिमंडल की सिफारिशों को भारत के राष्ट्रपति को निर्देशित करने से संबंधित अपीलार्थी द्वारा दी गई दलील रिट याचिका की व्याप्ति से परे है और इसलिए इसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए ।

12. इन अपीलों में जिस एकमात्र मुद्दे पर विचार किया जाना अपेक्षित है, वह राज्यपाल द्वारा अपीलार्थी के दंडादेश के परिहार पर राज्य मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश पर विनिश्चय किए बिना इसे तारीख 25 जनवरी, 2021 को भारत के राष्ट्रपति को किए गए निर्देश की शुद्धता के बारे में है । हम विद्वान् अपर महा-सालिसिटर के इस आरंभिक आक्षेप को स्वीकार नहीं करते हैं कि यह मुद्दा इस अपील की व्याप्ति के भीतर नहीं आता है । ऊपर वर्णित तथ्यों से, यह स्पष्ट है कि ये अपीलें उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई

[1] (2004) 8 एस. सी. सी. 788.

याचिकाओं को ग्रहण करने से इनकार करते हुए पारित किए गए आदेशों के विरुद्ध फाइल की गई हैं, जिनमें से एक याचिका इस मामले के शेष पहलुओं के अन्वेषण को प्रभावी रूप से मानीटर करने के लिए अनुरोध को नामंजूर करते हुए पदाभिहित टाडा न्यायालय के एक निर्णय के विरुद्ध थी । इस न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा दंडादेश के निलंबन की ईप्सा करते हुए फाइल की गई 2017 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 118421 में नोटिस जारी किए थे, जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि राज्य सरकार द्वारा समय-पूर्व छोड़े जाने की पहले ही प्रस्थापना करने के बावजूद केंद्रीय सरकार ने वर्ष 2017 तक अपीलार्थी के भाग्य पर कोई विनिश्चय नहीं किया था, जैसा कि **श्रीहरन** (उपुर्यक्त) वाले निर्णय के अनुसरण में अपेक्षित था । इसके अतिरिक्त, इन अपीलों के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी द्वारा परिहार के लिए प्रस्तुत की गई अर्जी पर राज्य मंत्रिमंडल द्वारा तारीख 9 सितंबर, 2018 को अनुग्रहपूर्वक विचार किया गया था किंतु राज्यपाल ने उक्त सिफारिश पर कोई विनिश्चय नहीं किया । अंततोगत्वा, राज्यपाल ने राज्य मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश पर कोई विनिश्चय किए बिना मामला भारत के राष्ट्रपति को निर्देशित कर दिया । इस न्यायालय के लिए विचार के लिए उद्भूत होने वाले मुद्दे के महत्व को ध्यान में रखते हुए, हम विद्वान् अपर महा-सालिसिटर के आक्षेप को स्वीकार करने से इनकार करते हैं और उस मुद्दे का अवधारण करने के लिए अग्रसर होते हैं जो अपीलार्थी द्वारा उठाया गया है ।

13. किसी ऐसी विधि के विरुद्ध, जिसके संबंध में राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश में विलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल में निहित है । अनुच्छेद 162 में यह स्पष्ट किया गया है कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन विषयों पर होगा, जिनके संबंध में उस राज्य के विधानमंडल को विधि बनाने की शक्ति है । संविधान के अनुच्छेद 163 में यह उपबंधित है कि जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके

अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने कृत्यों या उनमें से किसी को अपने विवेकानुसार करे, उन बातों को छोड़कर, राज्यपाल को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा ।

14. उन सीमाओं को, जिनके भीतर कार्यपालिका सरकार भारतीय संविधान के अधीन कार्य कर सकती है, कार्यपालिका के उस प्ररूप के प्रतिनिर्देश करके अधिक कठिनाई के बिना अभिनिश्चित किया जा सकता है, जिसको हमारे संविधान ने स्थापित किया है । यद्यपि हमारे संविधान की संरचना परिसंघीय है, तो भी वह ब्रिटिश संसदीय पद्धति पर बना हुआ है जिसमें सरकारी नीति निर्धारित करने के लिए और उसे विधि का रूप देने में कार्यपालिका की प्रमुख जिम्मेदारी समझी जाती है, यद्यपि इस उत्तरदायित्व के प्रयोग के लिए पूरोभाव्य शर्त राज्य की विधायी शाखा का विश्वास बनाए रखना है । राज्यपाल राज्य में कार्यपालिका के मुखिया की स्थिति का अधिभोग करता है किंतु वस्तुत: प्रत्येक राज्य में मंत्रिपरिषद् ही कार्यपालक सरकार का संचालन करती है । अत: भारतीय संविधान में संसदीय कार्यपालिका की वही पद्धति है जैसी इग्लैंड में है और मंत्रिपरिषद् विधानमंडल के सदस्यों से मिलकर उसी प्रकार बनती है जैसी कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल है, "यह एक योजक है जो एक बकसुए को जोड़ती है, जो राज्य के विधायी विभाग को कार्यपालिका विभाग से बांधती है" । (**राय साहब राम जवाया कपूर** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाला मामला देखें) ।

15. हमारे संविधान में यथा समाविष्ट सरकार की मंत्रिमंडल (कैबिनेट) प्रणाली के अधीन, राज्यपाल राज्य का सांविधानिक या औपचारिक प्रधान है और उन क्षेत्रों को छोड़कर, जिनमें राज्यपाल से संविधान द्वारा या संविधान के अधीन यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कर्तव्यों का प्रयोग स्व-विवेकानुसार करे, वह संविधान के अधीन या संविधान द्वारा अपने को प्रदत्त अपनी सभी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सहायता और सलाह पर करता है । जहां

[1] [1955] 2 एस. सी. आर. 225.

कहीं संविधान, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा किसी शक्ति या कृत्य के प्रयोग के लिए राष्ट्रपति या राज्यपाल के समाधान की अपेक्षा करता है, उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 123, 213, 311(2) परंतुक (ग), 317, 352(1), 356 और 360, वहां संविधान द्वारा अपेक्षित समाधान राष्ट्रपति या राज्यपाल का व्यक्तिगत समाधान नहीं है, बल्कि कैबिनेट शासन प्रणाली के अधीन सांविधानिक अर्थ में राष्ट्रपति या राज्यपाल का समाधान है । वह समाधान मंत्रिपरिषद् का समाधान है, जिसकी सहायता और सलाह पर राष्ट्रपति या राज्यपाल सामान्यत: अपनी-अपनी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करते हैं । (**शमशेर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाला मामला देखें) ।

16. यद्यपि, राज्यपाल संविधान के विभिन्न उपबंधों के अधीन कुछ कृत्यों का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत हो सकता है, तो भी उनका प्रयोग केवल अनुच्छेद 163 के अधीन उसे दी गई सहायता और सलाह के आधार पर किया जाना चाहिए, जब तक कि राज्यपाल को संबंधित कृत्य का स्व-विवेकानुसार निर्वहन करने के लिए किसी सांविधानिक उपबंध द्वारा या उसके अधीन अभिव्यक्त रूप से प्राधिकृत नहीं किया गया है । (**नाबम रेबिया एंड बामंग फेलिक्स** बनाम **उप सभापति, अरुणाचल प्रदेश विधानसभा**[2] वाला मामला देखें) ।

17. **मारू राम** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ ने प्राधिकारवान रूप से अनुच्छेद 161 के विषय में स्थिति का इसमें इसके पश्चात् उद्धृत अनुसार सारांश दिया था : ".....राज्यपाल औपचारिक मुखिया होता है और वह कार्यपालक शक्तियों का मात्र खजाना होता है, किंत वह मंत्रिपरिषद् की सलाह पर तथा उसके अनुसार कार्य करने के सिवाय कार्य करने में असमर्थ होता है । निष्कर्ष यह है कि राज्य सरकार, चाहे राज्यपाल उसे पसंद करे या नहीं, सलाह दे सकती है, अनुच्छेद 161 के अधीन कार्य कर सकती है और राज्यपाल उसकी सलाह से आबद्ध होता है । इस प्रकार, लघुकरण और (कारावास)

---

[1] [1975] 1 उम. नि. प. 357 = (1974) 2 एस. सी. सी. 831.

[2] (2016) 8 एस. सी. सी. 1.

[3] [1981] 4 उम. नि. प. 165 = (1981) 1 एस. सी. सी. 161.

से छोड़े जाने की कार्रवाई सरकार के विनिश्चय के अनुसरण में की जा सकती है और आदेश राज्यपाल के अनुमोदन के बिना भी जारी किया जा सकता है, यद्यपि कारबार के नियमों के अधीन और सांविधानिक सौजन्य के तौर पर यह बाध्यकारी है कि राज्यपाल के हस्ताक्षर से ही क्षमा, लघुकरण या (कारावास) से छोड़ने की कार्रवाई प्राधिकृत की जानी चाहिए ।"

18. **शमशेर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस अभ्युक्ति का अनुसरण करते हुए इस न्यायालय ने **मारू राम** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह भी अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 72 और 161 के अधीन शक्तियों के प्रयोग के मामले में हमारी सांविधानिक स्कीम में दोनों सर्वोच्च पदाधिकारी मंत्रियों की सहायता और सलाह से, न कि स्वयं अपने निर्णय के आधार पर कार्य करते हैं और उन्हें करना चाहिए । सांविधानिक निष्कर्ष यह है कि राज्यपाल कुछ और नहीं अपितु राज्य सरकार की एक संक्षिप्त अभिव्यक्ति है ।

19. इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि, जिसका ब्यौरा ऊपर दिया गया है, स्पष्ट और सुव्यक्त है । राज्य के मंत्रिमंडल की सलाह अनुच्छेद 161 के अधीन दंडादेशों के लघुकरण/परिहार से संबंधित विषयों में राज्यपाल पर आबद्धकर है । संविधान के अधीन ऐसा कोई उपबंध हमें नहीं बताया गया है और न ही राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा की गई किसी सिफारिश को भारत के राष्ट्रपति को निर्देशित करने के लिए राज्यपाल की शक्ति के स्रोत के बारे में कोई समाधानप्रद उत्तर दिया गया है । प्रस्तुत मामले में, राज्यपाल को राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश को भारत के राष्ट्रपति के पास नहीं भेजा जाना चाहिए था । ऐसा कार्य ऊपर वर्णित सांविधानिक स्कीम के विपरीत है । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा सिफारिश तारीख 9 सितंबर, 2018 को की गई थी, जो राज्यपाल के समक्ष लगभग अढ़ाई वर्षों तक कोई विनिश्चय किए बिना लंबित पड़ी रही थी । केवल तब जब इस न्यायालय ने विनिश्चय करने में विलंब करने के कारण के बारे में जांच-पड़ताल आरंभ की, राज्यपाल ने अपीलार्थी के दंडादेश के परिहार के लिए राज्य सरकार द्वारा की गई सिफारिश को भारत के राष्ट्रपति को

प्रेषित कर दिया था ।

20. हमें राज्यपाल की शक्तियों के प्रयोग और उसके पद के कर्तव्यों के संपादन के विषय में या उसके द्वारा ऐसी शक्तियों और कर्तव्यों के प्रयोग और संपादन करते हुए किए गए किसी कृत्य या तात्पर्यित रूप से किए जाने वाले कृत्य के लिए राज्यपाल की उन्मुक्ति का पूरी तरह से भान है । तथापि, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है, इस न्यायालय को अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल के आदेशों का न्यायिक पुनर्विलोकन करने की शक्ति है, जिन्हें कतिपय आधारों पर आक्षेपित किया जा सकता है । जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **ईपुरु सुधाकर** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, अनुच्छेद 161 के अधीन शक्ति का प्रयोग न किया जाना न्यायिक पुनर्विलोकन से उन्मुक्त नहीं है । अनुच्छेद 161 के अधीन प्रस्तुत की गई याचिकाएं व्यक्तियों की स्वाधीनता से संबंधित हैं, इसलिए अबोधगम्य विलंब, जो कैदियों के कारण नहीं है, अक्षम्य है क्योंकि इससे किसी कैदी द्वारा झेली जा रही प्रतिकूल शारीरिक दशाओं और मानसिक कष्ट में योगदान होता है, विशेष रूप से जब राज्य के मंत्रिमंडल ने कैदी को उसके दंडादेश का परिहार/लघुकरण का फायदा प्रदान करके उसे छोड़े जाने का विनिश्चय किया है ।

21. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने **मध्य प्रदेश विशेष पुलिस स्थापन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के आधार पर यह दलील दी कि मंत्रिमंडल के किसी असंगत विनिश्चय की राज्यपाल द्वारा एक भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपने स्वविवेक से परीक्षा की जा सकती है । मध्य प्रदेश सरकार के दो मंत्रियों के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी प्रदान करना उक्त मामले की विषयवस्तु थी । भूमि के अवैध निर्मोचन को लेकर लोकायुक्त से की गई एक शिकायत के आधार पर, लोकायुक्त ने अन्वेषण किया था और यह उल्लेख करते हुए एक रिपोर्ट

---

[1] (2006) 8 एस. सी. सी. 161.

प्रस्तुत की थी कि दो मंत्रियों को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधीन अभियोजित करने के लिए पर्याप्त आधार हैं । मंत्रिपरिषद् ने एक विनिश्चय किया कि दोनों मंत्रियों के विरुद्ध मंजूरी प्रदान करने के लिए कोई सामग्री नहीं है । तथापि, राज्यपाल की यह राय थी कि अभियोजन के लिए एक प्रथमदृष्टया मामला बनता है और मंजूरी प्रदान की गई । व्यथित मंत्रियों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस आधार पर रिट याचिकाएं फाइल की गई थी कि राज्यपाल संविधान के अनुच्छेद 163 के अर्थांतर्गत स्वविवेक से कार्य नहीं कर सकता था । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने मंत्रियों की रिट याचिकाओं को यह निष्कर्ष निकालते हुए मंजूर किया कि मंत्रियों को अभियोजित करने के लिए मंजूरी प्रदान करना ऐसा कार्य नहीं था जिसका प्रयोग राज्यपाल द्वारा 'स्वविवेक' से किया जा सकता था और राज्यपाल मंत्रिपरिषद् की सहायता और सलाह के विपरीत कार्य नहीं कर सकता था । इस विनिश्चय को उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा कायम रखा गया था, जिससे व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की गई थीं । इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को उलट दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि जबकि सामान्य परिस्थितियों में अभियोजन के लिए मंजूरी का विषय मंत्रिपरिषद् की सहायता और सलाह पर है, न कि राज्यपाल के विवेक पर, किंतु या तो किसी मुख्यमंत्री या किसी मंत्री को अभियोजित करने के लिए मंजूरी प्रदान करने का अपवाद वहां उद्भूत हो सकता है, जहां उपयुक्तता के विषय के रूप में राज्यपाल ने स्वविवेक से कार्य करना हो । इस न्यायालय द्वारा यह पाया गया था कि मंजूरी प्रदान करने से इनकार करते समय लोकायुक्त की रिपोर्ट जैसी सुसंगत बात मंत्रिपरिषद् के मस्तिष्क में नहीं थी और किसी सुसंगत तथ्य या विसंगत और बाह्य कारकों के आधार पर पारित ऐसे आदेशों पर विचार करते हुए, जो निष्कर्ष तक पहुंचने के प्रयोजन के लिए संगत नहीं है, ऐसी इनकारी से प्रशासनिक आदेश दूषित हो जाता है । ऐसे मामलों में, इस न्यायालय की यह राय थी कि राज्यपाल अपने स्वविवेक से कार्य कर सकता है, अन्यथा विधि व्यवस्था पूर्णत: ध्वस्त हो जाएगी ।

22. खेद है कि **मध्य प्रदेश विशेष पुलिस स्थापन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू नहीं होता है । राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा सुसंगत कारकों पर विचार न करने या राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा बाह्य बातों के आधार पर अपनी सिफारिश करने का मामला सिद्ध करने के लिए कोई तर्क नहीं दिए गए हैं । इसके अतिरिक्त, उक्त मामले में राज्यपाल ने प्रस्तुत मामले के असदृश, जिसमें राज्यपाल ने राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा की गई सिफारिश को मात्र भारत के राष्ट्रपति को प्रेषित कर दिया था, एक विनिश्चय किया था जिसे बाद में चुनौती दी गई थी ।

23. श्री नटराज द्वारा **श्रीहरन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का यह दलील देने के लिए जोरदार अवलंब लिया गया कि जब कोई दंडादेश भारतीय दंड संहिता के उपबंधों में से किसी के अधीन अधिरोपित किया जाता है, तो वह केवल भारत का राष्ट्रपति ही है जिसे क्षमा करने या परिहार प्रदान करने या दंडादेश का लघुकरण करने की शक्ति है और राज्यपाल को संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए क्षमा प्रदान करने की कोई शक्ति नहीं है । **श्रीहरन** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा विचार के लिए विरचित किए गए प्रश्नों में से एक प्रश्न दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 और 433 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए "समुचित सरकार" के अवधारण से संबंधित था । न्यायमूर्ति इब्राहिम कलिफुल्ला (स्वयं अपनी ओर से, मुख्य न्यायमूर्ति दत्तू और न्यायमूर्ति घोष की ओर से निर्णय लिखते हुए) की राय के अनुसार निम्नलिखित शब्दों में उत्तर दिया गया था :–

> "प्रश्न 52.3, 52.4 और 52.5 :
>
> 52.3 क्या संहिता की धारा 432(7) संघ की कार्यपालिका शक्ति को स्पष्ट रूप से प्रमुखता देती है और जहां संघ की शक्ति सम-विस्तृत है, वहां राज्य की कार्यपालिका शक्ति को अपवर्जित करती है ?
>
> 52.4 क्या परिहार की शक्ति का प्रयोग करने के लिए भारत

के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 में सूचीबद्ध विषय पर संघ की प्रमुखता है या राज्य की ?

52.5 क्या किसी प्रस्तुत मामले में संहिता की धारा 432(7) के अधीन दो समुचित सरकारें हो सकती हैं ?

उत्तर :

180. समुचित सरकार की प्रास्थिति, चाहे संघ सरकार हो या राज्य सरकार, दंड न्यायालय द्वारा पारित किए गए दंडादेश के आदेश पर निर्भर करेगी, जैसा कि धारा 432(6) में अनुबंधित किया गया है और संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन या स्वत: संविधान के अधीन केंद्र को प्रदत्त विनिर्दिष्ट कार्यपालिका शक्ति की स्थिति में, दोषसिद्धि और दंडादेश संसद् की उक्त विधि या संविधान के उपबंधों के अंतर्गत आने की दशा में भले ही राज्य का विधानमंडल भी उसी विषय पर कोई विधि बनाने के लिए सशक्त हो, संविधान के अनुच्छेद 73(1)(क) के परंतुक में अंतर्विष्ट चिरभोग को ध्यान में रखते हुए समुचित सरकार संघ सरकार होगी । जी. वी. रामानय्या **बनाम** केंद्रीय जेल अधीक्षक [(1974) 3 एस. सी. सी. 531 = 1974 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 6 = ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 31] वाले मामले के विनिश्चय में उल्लिखित सिद्धांत लागू होना चाहिए । दूसरे शब्दों में, जो मामले पूरी तरह से केंद्र को प्रदत्त विनिर्दिष्ट कार्यपालिका शक्ति के फलस्वरूप धारा 432(7)(क) के अंतर्गत आते हैं, उनमें संघ सरकार को समुचित सरकार की प्रास्थिति के साथ प्रमुखता होगी । धारा 432(7)(ए) के अधीन आने वाले मामलों को छोड़कर, ऐसे सभी अन्य मामलों में जहां अपराधी को संबंधित राज्य की क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर दंडादिष्ट किया जाता है या दंडादेश का आदेश पारित किया जाता है, वहां राज्य सरकार समुचित सरकार होगी ।"

24. न्यायमूर्ति ललित ने सम्मत राय में (स्वयं अपने और न्यायमूर्ति सप्रे की ओर से निर्णय लिखते हुए) प्रश्न का निम्न प्रकार से

उत्तर दिया गया था :–

"219. तथापि, प्रस्तुत मामले में हमारा सरोकार पूर्णरूपेण भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध से है । जहां तक टाडा के अधीन अपराधों का संबंध है, प्रत्यर्थी-दोषसिद्ध को दोषमुक्त किया जाता है । हम विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री राकेश द्विवेदी की इन दलीलों में बल पाते हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का संबंध प्रत्यक्ष रूप से संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 1 के अधीन 'लोक व्यवस्था' से है और अनन्य रूप से राज्य सरकार के अधिकार-क्षेत्र में है । हमारे मत में, प्रश्नगत अपराध अनन्य रूप से राज्य सरकार के अधिकार-क्षेत्र के भीतर आता है और वह राज्य की कार्यपालिका शक्ति ही है जिसका ऐसे अपराध पर विस्तार होना चाहिए । यदि दलील के लिए यह स्वीकार किया जाता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध सूची 3 की प्रविष्टि 1 से संबंधित है, तो इसमें ऊपर चर्चा किए गए सिद्धांतों के अनुसार संविधान में किसी विनिर्दिष्ट उपबंध या संसद् द्वारा बनाई गई विधि के अभाव में केवल राज्य सरकार की कार्यपालिका शक्ति का ही विस्तार होना चाहिए । परिणामत:, प्रस्तुत मामले में प्रश्नगत अपराध की बाबत समुचित सरकार राज्य सरकार है । यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि के. एम. नानावती **बनाम** बंबई राज्य [ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 112 = (1961) 1 क्रिमिनल एल. जे. 173 = (1961) 1 एस. सी. आर. 497, पृ. 516] वाले मामले से लेकर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराधों से संबंधित मामलों में अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल या दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन समुचित सरकार के रूप में राज्य सरकार की है जो समुचित शक्तियों का प्रयोग कर रहे हैं ।"

25. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432(7) को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"**432. दंडादेशों का निलंबन या परिहार करने की शक्ति**

.....

(7) इस धारा में और धारा 433 में 'समुचित सरकार' पद से,–

(क) उन दशाओं में, जिनमें दंडादेश ऐसे विषय से संबद्ध किसी विधि के विरुद्ध अपराध के लिए है या उपधारा (6) में निर्दिष्ट आदेश ऐसे विषय से संबद्ध किसी विधि के अधीन पारित किया गया है, जिस विषय पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, केंद्रीय सरकार अभिप्रेत है ;

(ख) अन्य दशाओं में, उस राज्य की सरकार अभिप्रेत है, जिसमें अपराधी दंडादिष्ट किया गया है या उक्त आदेश पारित किया गया है ।"

संघ की कार्यपालिका शक्ति के विस्तार को अभिनिश्चित के लिए इस न्यायालय ने अनुच्छेद 72, 73, 161 और 162 पर विचार किया था और एक विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया था । निर्णय में चर्चा का केंद्र बिंदु संविधान के अनुच्छेद 73 के परंतुक से संबंधित है । अनुच्छेद 73(1) निम्नलिखित है :–

"**अनुच्छेद 73. संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार –** (1) इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार –

(क) जिन विषयों के संबंध में संसद् को विधि बनाने की शक्ति है उन तक, और

(ख) किसी संधि या करार के आधार पर भारत सरकार द्वारा प्रयोक्तव्य अधिकारों, प्राधिकार और अधिकारिता के प्रयोग तक,

होगा :

परंतु इस संविधान में या संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि

> में अभिव्यक्त रूप से यथाउपबंधित के सिवाय, उपखंड (क) में निर्दिष्ट कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य में ऐसे विषयों तक नहीं होगा, जिनके संबंध में उस राज्य के विधानमंडल को भी विधि बनाने की शक्ति है ।
>
> ..... ।"

26. एक सुविस्तृत चर्चा के पश्चात्, जिसके अंतर्गत प्रारूप अनुच्छेद 60 जो अनुच्छेद 73 का समवर्ती है, पर संविधान सभा की बहस के प्रतिनिर्देश भी है, इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां राज्य विधानमंडल भी उसी विषय पर विधि बनाने के लिए सशक्त हो, यह अवधारण करने का विनिश्चय कि क्या संघ सरकार की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार राज्य सरकार पर होगा या नहीं, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि क्या कार्यपालिका शक्ति या तो संविधान द्वारा या संसद् द्वारा बनाई गई विधि के अधीन अभिव्यक्त रूप से केंद्र को प्रदत्त की गई है । अत: यह अवधारण करने के लिए कि क्या संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 में के किसी विषय पर है, यह परीक्षा की जानी चाहिए कि क्या संघ को कार्यपालिका शक्ति संविधान या संसद् द्वारा बनाई गई विधि के अधीन अभिव्यक्त रूप से प्रदत्त की गई है, ऐसा न होने पर राज्य की कार्यपालिका शक्ति अविकल रहेगी । हमारे विचार से, उक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराधों का संबंध है, संविधान या संसद् द्वारा बनाई गई विधि के अधीन संघ को कार्यपालिका शक्ति अभिव्यक्त रूप से प्रदत्त करते हुए किसी विनिर्दिष्ट उपबंध के अभाव में, राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार इस बात को विचार में लाए बिना होगा कि क्या धारा 302 के अधीन विषयवस्तु पर विचार सातवीं अनुसूची की सूची 2 में की किसी प्रविष्टि या सूची 3 की किसी प्रविष्टि द्वारा आच्छादित होती है या नहीं ।

27. श्री शंकरनारायण ने मामलों की एक सूची प्रस्तुत की, जिनमें

इस न्यायालय ने उन मामलों के विनिर्दिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में पूर्णरूपेण धारा 302 के अधीन या अन्य अपराधों के साथ दोषसिद्ध किए गए बंदी को कैद की लंबी अवधि, कैद की अवधि के दौरान अभिप्राप्त शैक्षणिक अर्हताओं, जेल में उसके आचरण तथा कैदियों को एक अन्य दौर की मुकदमेबाजी में डालने की व्यर्थता पर विचार करते हुए छोड़े जाने का निदेश दिया है ।

28. अपीलार्थी अपनी गिरफ्तारी के समय पर 19 वर्ष का था और 32 वर्ष कैद में रहा है, जिसमें से उसने 16 वर्ष मृत्यु के साये में और 29 वर्ष एकांत कारावास में व्यतीत किए हैं । जेल में उसके आचरण के संबंध में कोई शिकायत नहीं रही है । दो अवसरों पर जब अपीलार्थी को पैरोल पर छोड़ा गया था, उसके आचरण या छोड़े जाने की किसी शर्त को भंग करने के संबंध में कोई शिकायत नहीं थी । अपीलार्थी की ओर से फाइल किए गए चिकित्सा अभिलेखों से यह उपदर्शित होता है कि वह पुराने रोगों से ग्रस्त है । जेल में उसके अच्छे व्यवहार के अतिरिक्त, अपीलार्थी ने स्वयं को शिक्षित भी किया है और अपना +2, एक अस्नातक डिग्री, एक स्नातकोत्तर डिग्री, एक डिप्लोमा और 8 प्रमाणपत्र पाठ्यक्रमों को सफलतापूर्वक पूर्ण किया है । इस बात को देखते हुए कि अनुच्छेद 161 के अधीन उसकी अर्जी उसके दंडादेश के परिहार के लिए राज्य मंत्रिमंडल की सिफारिश के बाद अढ़ाई वर्ष लंबित रही थी और राज्यपाल द्वारा किए गए निर्देश के बाद भी एक वर्ष से ज्यादा लंबित चलती रही थी, हम मामले को राज्यपाल के विचार के लिए प्रतिप्रेषित करना उचित नहीं समझते हैं । किसी अन्य निर्हरता के अभाव में और इस मामले के आपवादिक तथ्यों और परिस्थितियों में, संविधान के अनुच्छेद 132 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए हम यह निदेश देते हैं कि यह समझा जाएगा कि अपीलार्थी ने 1991 के अपराध सं. 329 के संबंध में दंडादेश भुगत लिया है । अपीलार्थी को, जो जमानत पर है, तुरंत स्वतंत्र कर दिया जाए ।

29. निष्कर्षत:, हमारे निष्कर्षों का सार निम्न प्रकार से है :–

(क) इस न्यायालय के अनेक निर्णयों द्वारा अधिकथित यह विधि सुस्थिर है कि संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्यपाल पर राज्य मंत्रिमंडल की सलाह आबद्धकर है ।

(ख) अनुच्छेद 161 के अधीन शक्ति का प्रयोग न करना या ऐसी शक्ति का प्रयोग करने में ऐसा अबोधगम्य विलंब जिसके लिए कैदी जिम्मेदार नहीं है, इस न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन है, विशेष रूप से जब राज्य मंत्रिमंडल ने कैदी को छोड़े जाने का विनिश्चय किया है और राज्यपाल को इस आशय के लिए सिफारिश की है ।

(ग) राज्यपाल द्वारा तमिलनाडु मंत्रिमंडल की सिफारिश को ऐसी सिफारिश किए जाने के अढ़ाई वर्ष पश्चात् भारत के राष्ट्रपति को किया गया निर्देश किसी सांविधानिक समर्थन के बिना है और हमारे संविधान की स्कीम के लिए हानिकर है, जिसके द्वारा "राज्यपाल राज्य सरकार के लिए मात्र एक संक्षिप्त अभिव्यक्ति है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **मारू राम** बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त) वाले मामले में मत व्यक्त किया गया है ।

(घ) **मध्य प्रदेश विशेष पुलिस स्थापन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय इस मामले के तथ्यों को लागू नहीं होता है और न ही राज्य मंत्रिमंडल द्वारा साफ-साफ पक्षपात करने या राज्य मंत्रिमंडल द्वारा विसंगत बातों के आधार पर अपना विनिश्चय करने का मामला सिद्ध किया गया है, जिससे उक्त निर्णय का आधार गठित होता हो ।

(ङ) **श्रीहरन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय में संघ सरकार की भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अधिरोपित दंडादेशों का परिहार/लघुकरण करने की शक्ति के संबंध में जो समझ की बात कही गई है, वह गलत है क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के संबंध में केंद्र को न तो संविधान और न

ही संसद् द्वारा बनाई गई विधि के अधीन कोई अभिव्यक्त कार्यपालिका शक्ति प्रदत्त की गई है । ऐसी विनिर्दिष्ट शक्ति प्रदत्त न करने के अभाव में, यह धारणा करते हुए कि धारा 302 के अधीन विषयवस्तु सूची 3 की प्रविष्टि 1 के अंतर्गत आती है, राज्य सरकार की कार्यपालिका शक्ति का ही धारा 302 की बाबत विस्तार है ।

(च) अपीलार्थी की कैद में लंबी अवधि, जेल में तथा पैरोल के दौरान उसके संतोषजनक आचरण, उसके चिकित्सा अभिलेखों से पुराने रोगों, कैद में रहने के दौरान अर्जित उसकी शैक्षणिक अर्हताओं और राज्य मंत्रिमंडल की सिफारिश के पश्चात् अढ़ाई वर्ष तक अनुच्छेद 161 के अधीन उसकी अर्जी के लंबित रहने की बात को ध्यान में रखते हुए, हम मामले को राज्यपाल के विचार के लिए प्रतिप्रेषित करना उपयुक्त नहीं समझते हैं । संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, हम यह निदेश देते हैं कि यह समझा जाएगा कि अपीलार्थी के 1991 के अपराध सं. 329 के संबंध में दंडादेश को भुगत लिया है । अपीलार्थी को, जो पहले ही जमानत पर है, तुरंत स्वतंत्र किया जाता है । उसके जमानत बंधपत्र रद्द किए जाते हैं ।"

30. तद्नुसार, इन अपीलों का निपटारा किया जाता है ।

अपीलों का निपटारा किया गया ।

जस.

[2022] 2 उम. नि. प. 278

साबित्री सामंत्रे

बनाम

उड़ीसा राज्य

और

बिद्याधर प्रहराज

बनाम

उड़ीसा राज्य

[2017 की दांडिक अपील सं. 988 और 2022 की दांडिक अपील सं. 860]

20 मई, 2022

मुख्य न्यायमूर्ति एन. वी. रमना, न्यायमूर्ति कृष्ण मुरारी और न्यायमूर्ति हिमा कोहली

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302, 201 और 304(II) [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106] – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – अभियुक्तों की पुत्री और मृतक के बीच प्रेम संबंध होना – मृतक द्वारा अभियुक्तों के मकान पर जाने पर उनके द्वारा गला घोंटकर उसकी हत्या किया जाना और उसके शरीर पर तेजाब छिड़ककर शनाख्त छिपाने का प्रयत्न किया जाना – दोषसिद्धि – आजीवन कारावास का दंडादेश दिया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को कायम रखा जाना और इसे धारा 304 भाग 2 में उपांतरित किया जाना – दोषसिद्धि के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील – जहां सभी साक्षियों द्वारा किए गए कथनों, सुसंगत स्थान और समय पर मृतक को पहुंची घातक क्षतियों, अभियुक्तों के अपराध कारित करने के आशय को सफलतापूर्वक सिद्ध किया गया हो और अभियुक्त अपने इस भार का निर्वहन करने में असफल रहे हों कि उनके मकान में

मृतक की मृत्यु कैसे हुई थी, वहां घटनाओं की संपूर्ण श्रृंखला से केवल अभियुक्तों की दोषिता इंगित होने पर उनकी दोषसिद्धि उचित है और उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

इन अपीलों के तथ्य इस प्रकार हैं कि अभियुक्त-अपीलार्थी एक किराए के मकान में रह रहे थे । मकान मालिक ने तारीख 21 जुलाई, 2008 को यह उल्लेख करते हुए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की कि एक अनजान व्यक्ति ने लगभग 7.30 बजे अपराह्न में अभियुक्त अपीलार्थियों पर उस समय हमला किया था, जब वह अपने मकान में टेलीविजन देख रहा था । मकान मालिक ने यह उल्लेख किया कि उसने अपने मकान के उस भाग से, जो अपीलार्थियों को किराए पर दिया गया था, एक जोर से चिल्लाने की आवाज सुनी और चूंकि वह यह पूछताछ करने के लिए दौड़ा कि क्या हुआ है, तो उसने एक अनजान व्यक्ति को अपीलार्थियों पर एक "कट्टे" से हमला करते हुए देखा । परिणामत:, मकान मालिक सहायता के लिए चिल्लाया और चूंकि अन्य लोग मकान के आसपास इकट्ठा हो गए थे, तो उसने एक अंत:-संबद्ध दरवाजे से पति-पत्नी को बचाया । यह अनजान व्यक्ति अपीलार्थियों के मकान के अंदर ही रहा । पुलिस को बुलाया गया, सभी कमरों की तलाशी ली गई, उसके पश्चात् वह व्यक्ति मकान की रसोई में मृत पाया गया । आरंभ में यह संदेह हुआ कि उसने विष खाकर आत्महत्या की है । इसके पश्चात्, शव को शवपरीक्षा के लिए भेजा गया और शव को शनाख्त के लिए परिरक्षित रखा गया । तारीख 24 जुलाई, 2008 को रंजन राणा नामक व्यक्ति ने मृतक की संजय राणा के रूप में शनाख्त की । उसने यह भी प्रकटन किया कि मृतक के अपीलार्थियों की पुत्री के साथ प्रेम संबंध थे । मरणोत्तर परीक्षा में डाक्टर द्वारा यह राय व्यक्त की गई कि मृत्यु गर्दन के निचले भाग को दबाने से श्वासनली का उपरि सिरा अवरुद्ध हो जाने के कारण हुई थी । यह भी राय व्यक्त की गई कि अपराध के शिकार व्यक्ति पर दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा तेजाब और कुंद वस्तुओं से हमला किया गया था । अत: मृत्यु मानववध प्रकृति की थी । इसके परिणामस्वरूप, अभियुक्त-अपीलार्थियों और उनकी पुत्री (अभियुक्त सं. 3) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 201, 109 और 34

के अधीन अपराधों के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया । सेशन न्यायालय ने अपने निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे सफलतापूर्वक सिद्ध किया है और इसलिए अभियुक्त अपीलार्थियों और उनकी पुत्री को उपर्युक्त धाराओं के अधीन दोषसिद्ध किया । अपीलार्थियों और उसकी पुत्री द्वारा व्यथित होकर विचारण न्यायालय के निर्णय को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई । उच्च न्यायालय द्वारा पुत्री को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया, चूंकि वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं थी । यह मत व्यक्त किया गया कि वास्तविक घटना में उसकी कोई भूमिका नहीं थी और इसलिए उसे अपराध की दुष्प्रेरक के रूप में नहीं माना जा सकता है । इसके विपरीत, उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थियों और मृतक के बीच कुछ न कुछ घटित हुआ था, जिसके कारण हमला किया गया था । यह भी मत व्यक्त किया गया कि यह प्रतीत होता है कि उसके पश्चात् अपीलार्थियों द्वारा किसी तरह मृतक को काबू किया गया और उसे नि:शस्त्र किया गया । उसके पश्चात्, दोनों अपीलार्थियों ने गला घोंटकर उसकी मृत्यु कारित कर दी और शनाख्त में बाधा डालने के लिए उस पर तेजाब छिड़क दिया । तथापि, चूंकि गंभीर और अचानक प्रकोपन विद्यमान होने की प्रबल संभाव्यता थी, जो प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से दिखाई पड़ रहा था, इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304(II) के अधीन उपांतरित कर दिया गया और दोनों अभियुक्तों को तद्द्वारा पांच वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया । अभियुक्तों द्वारा अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभि. सा. 9 के कथन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मृतक की मृत्यु के समय पर मकान के अंदर केवल अभियुक्त-अपीलार्थी मौजूद थे । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थियों की इस

दलील को कि इकट्ठा हो गए लोगों ने वास्तव में मृतक पर हमला किया था और उसके चेहरे को विकृत कर दिया था, उच्च न्यायालय ने इस दावे के समर्थन में दिए गए किसी तात्विक साक्ष्य के न होने के कारण ठीक ही नामंजूर किया था । उसके पश्चात् मृतक की बहिन-गीतांजलि राणा (अभि. सा. 12) के परिसाक्ष्य का अवलंब लिया गया, जिसने यह कथन किया था कि मृतक एक स्वर्णकार था और उसकी आभूषण की दुकान थी । इस साक्षी ने यह भी कथन किया था कि मृतक के अपीलार्थियों की पुत्री के साथ प्रेम संबंध थे और वह प्राय: एक माह में एक या दो बार उसके मकान पर जाता रहता था । यह भी कथन किया गया था कि मृतक ने अपीलार्थियों की पुत्री (अभियुक्त सं. 3) को 70,000/- रुपए की रकम दी थी क्योंकि उसने उससे मदद मांगी थी । मृतक अभियुक्त सं. 3 से विवाह करना चाहता था, तथापि, एक बैंक में नौकरी मिलने के उपरांत अपीलार्थियों की पुत्री ने मृतक की अनदेखी करनी शुरु कर दी और उसकी कुण्ठा बढ़ने लगी थी । मृतक की बहिन ने अपने कथन में आगे यह भी कथन किया कि मृतक अपनी मृत्यु से पूर्व यह चीखते हुए घर से गया था कि वह या तो अपीलार्थियों की पुत्री के साथ वापस आएगा या अपना धन वापस लेगा । इस कथन की पुष्टि अभि. सा. 7 और अभि. सा. 8 द्वारा भी की गई थी, जो क्रमश: मृतक का मित्र और चचेरा भाई था । अत: उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही यह मत व्यक्त किया गया था कि इन दूसरे संवर्ग के साक्षियों के कथन से अपराध कारित करने के हेतु का पता चलता है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि अभियुक्त अपीलार्थियों द्वारा किया गया यह दावा भी मिथ्या है कि मृतक उन्हें नहीं जानता था, विशेष रूप से इस बात पर विचार करते हुए कि उनकी पुत्री (अभियुक्त सं. 3) ने अपने अभिसाक्ष्य में यह स्वीकार किया था कि मृतक अपीलार्थियों के मकान पर आता रहता था । अत: प्रस्तुत मामले में, अभियोजन पक्ष अपराध कारित करने के लिए अपीलार्थियों के आशय को सिद्ध करने में सफल रहा था । ऐसे आशय का विश्लेषण जब सभी संवर्ग के साक्षियों द्वारा किए गए कथनों और सुसंगत स्थान और समय पर मृतक को पहुंची घातक क्षतियों को ध्यान में रखते हुए किया जाए, तो निश्चित रूप से यह एक मजबूत मामला सिद्ध होता है कि मृतक की मृत्यु वास्तव में अपीलार्थियों द्वारा

कारित की गई थी । अत: जब एक बार अभियोजन पक्ष ने घटनाओं की श्रृंखला को सफलतापूर्वक सिद्ध कर दिया था, तो इसे अन्यथा साबित करने का भार अपीलार्थी पर था । अत: उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह मत व्यक्त किया था कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को ध्यान में रखते हुए यह प्रकट करने का भार अब अपीलार्थियों पर था कि कैसे मृतक को अपनी जान गंवानी पड़ी थी । अत: उपरोक्त तथ्यों और इनके साथ उल्लिखित कारणों को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि घटनाओं का संपूर्ण क्रम प्रबल रूप से अभियुक्त-अपीलार्थियों की दोषिता को इंगित करता है और अपीलार्थी इस संबंध में कोई विश्वसनीय प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने में असफल रहे हैं । घटनाओं की संपूर्ण श्रृंखला अपीलार्थियों की दोषिता की ओर इंगित करती है । अत: यह न्यायालय पारित किए गए आक्षेपित निर्णय में कोई गलती नहीं पाता है और तद्नुसार, ये अपीलें खारिज की जाती हैं ।

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 4 एस. सी. सी. 393 : **अशोक** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	25
[2006]	(2006) 10 एस. सी. सी. 681 **त्रिमुख मरोति किरकन** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	15, 19
[2005]	(2005) 9 एस. सी. सी. 15 : **देवेन्द्र कुमार सिंगला** बनाम **बलदेव सिंह सिंगला** ;	10
[2003]	(2003) 10 एस. सी. सी. 21 : **राजेन्द्र कुमार** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	14
[2002]	(2002) 10 एस. सी. सी. 236 : **मोहन सिंह** बनाम **प्रेम सिंह और एक अन्य** ;	10
[1956]	[1956] एस. सी. आर. 199 : **शंभु नाथ मेहरा** बनाम **अजमेर राज्य** ।	8

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2017 की दांडिक अपील सं. 988 (इसके साथ 2022 की दांडिक अपील सं. 860).

2015 की दांडिक अपील सं. 202 में उड़ीसा उच्च न्यायालय, कटक के तारीख 8 नवंबर, 2016 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सुश्री अमृता पंडा, सर्वश्री कनिष्क अग्रवाल, देबेश पंडा ओर उद्भव गादे

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री सुवेन्दु सुवाशीष दास, (सुश्री) स्वाति वैभव, (सुश्री) अनिंदिता पुजारी, सिद्धार्थ श्रीवास्तव, आजाद बंसाला और (सुश्री) प्रकृति रस्तोगी ।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति कृष्ण मुरारी ने दिया ।

न्या. मुरारी – 2017 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 3881 में इजाजत दी गई ।

2. ये अपीलें 2015 की दांडिक अपील सं. 202 में उड़ीसा उच्च न्यायालय, कटक द्वारा तारीख 8 नवंबर, 2016 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं । इस अपील में अपीलार्थी अर्थात् साबित्री सामंते और बिद्याधर प्रहराज क्रमश: पति और पत्नी हैं । ये दोनों 2008 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 120 में अभियुक्त सं. 2 और अभियुक्त सं. 1 के रूप में पंक्तिबद्ध किए गए थे । इस अपील में अपीलार्थियों को उनकी पुत्री (अभियुक्त सं. 3) के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 201 के अधीन अपराधों के लिए आरोपित किया गया था । सेशन न्यायालय, जाजपुर ने 2010 के सी. टी. मामला सं. 76 में अभियुक्त सं. 1 और 2 को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 201 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया, जिसके द्वारा दोनों अपीलार्थियों को कठोर आजीवन कारावास भुगतने और 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने की दशा में छह माह का अतिरिक्त कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । उनकी पुत्री

अर्थात् अभियुक्त सं. 3 को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 109 के अधीन दोषसिद्ध किया और कठोर आजीवन कारावास भुगतने और 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने की दशा में छह माह का अतिरिक्त कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । बाद में, उच्च न्यायालय ने इस अपील में आक्षेपित आदेश द्वारा अपीलार्थियों की पुत्री को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया, किंतु अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को कायम रखा । तथापि, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304(II) के अधीन उपांतरित कर दिया गया और इसलिए दंडादेश की अवधि को कम करके पांच वर्ष की अवधि का कठोर कारावास और 10,000/- रुपए का जुर्माना तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने की दशा में अतिरिक्त छह माह का कठोर कारावास कर दिया गया ।

तथ्यात्मक पृष्ठभूमि

3. इस अपील में अभियुक्त-अपीलार्थी मायाधर मोहपना नामक व्यक्ति के किराएदार थे । उक्त मकान मालिक ने तारीख 21 जुलाई, 2008 को यह उल्लेख करते हुए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की कि एक अनजान व्यक्ति ने लगभग 7.30 बजे अपराह्न में अभियुक्त अपीलार्थियों पर उस समय हमला किया, जब वह अपने मकान में टेलीविजन देख रहा था । मकान मालिक ने यह उल्लेख किया कि उसने अपने मकान के उस भाग से जो अपीलार्थियों को किराए पर दिया गया था, एक जोर से चिल्लाने की आवाज सुनी और चूंकि वह यह पूछताछ करने के लिए दौड़ा कि क्या हुआ है, तो उसने एक अनजान व्यक्ति को अपीलार्थियों पर एक "कट्टे" से हमला करते हुए देखा । परिणामतः, मकान मालिक सहायता के लिए चिल्लाया और चूंकि अन्य लोग मकान के आसपास इकट्ठा हो गए थे, तो उसने एक अंतः-संबद्ध दरवाजे से पति-पत्नी को बचाया ।

4. यह अनजान व्यक्ति अपीलार्थियों के मकान के अंदर ही रहा । पुलिस घटनास्थल पर पहुंची, सभी कमरों की तलाशी ली, उसके पश्चात् वह व्यक्ति मकान की रसोई में मृत पाया गया । आरंभ में यह संदेह

हुआ कि उसने विष खाकर आत्महत्या की है । इसके पश्चात्, शव को शवपरीक्षा के लिए भेजा गया और इसके पश्चात् शव को शनाख्त के लिए परिरक्षित रखा गया । तारीख 24 जुलाई, 2008 को रंजन राणा नामक व्यक्ति ने मृतक की संजय राणा के रूप में शनाख्त की । उसने यह भी प्रकटन किया कि मृतक के अपीलार्थियों की पुत्री के साथ प्रेम संबंध थे ।

5. शव की मरणोत्तर परीक्षा भी की गई और डाक्टर द्वारा यह राय व्यक्त की गई कि मृत्यु गर्दन के निचले भाग को दबाने से श्वासनली का उपरि सिरा अवरुद्ध हो जाने के कारण कारित हुई थी । यह भी राय व्यक्त की गई थी कि अपराध के शिकार व्यक्ति पर दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा तेजाब और कुंद वस्तुओं से हमला किया गया था । अत: मृत्यु मानववध प्रकृति की थी । इसके परिणामस्वरूप, अभियुक्त अपीलार्थियों और उनकी पुत्री (अभियुक्त सं. 3) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 201, 109 और 34 के अधीन अपराधों के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया ।

6. इसके विपरीत, अभियुक्त अपीलार्थियों ने यह दावा किया कि अनजान व्यक्ति जबरदस्ती उनके मकान में घुसा था और इसे अंदर से बंद कर लिया था । उसने पहले अभियुक्त सं. 1 (अर्थात् बिद्याधर प्रहराज) के साथ मुठभेड़ की और धमकी दी कि यदि उसने संपूर्ण धनराशि और मूल्यवान वस्तुएं सौंपने से इनकार किया तो उसे जान से मार दिया जाएगा । इसके पश्चात्, मृतक द्वारा दोनों अपीलार्थियों पर हमला किया गया, जिसके परिणामस्वरूप क्षतियां पहुंचीं । आखिरकार उन्हें बचा लिया गया था और उसके पश्चात् पुलिस ने उन्हें एक मिथ्या मामले में फंसा दिया ।

7. सेशन न्यायालय ने तारीख 30 मार्च, 2015 के अपने निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे सफलतापूर्वक सिद्ध किया है और इसलिए अभियुक्त अपीलार्थियों और उनकी पुत्री को उपर्युक्त धाराओं के अधीन दोषसिद्ध किया । अपीलार्थियों और उसकी पुत्री ने व्यथित होकर विचारण न्यायालय के निर्णय को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी । उच्च

न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा पुत्री को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया, चूंकि वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं थी । यह मत व्यक्त किया गया कि वास्तविक घटना में उसकी कोई भूमिका नहीं थी और इसलिए उसे अपराध की दुष्प्रेरक के रूप में नहीं माना जा सकता है । इसके विपरीत, उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थियों और मृतक के बीच कुछ न कुछ घटित हुआ था, जिसके कारण हमला किया गया था । यह भी मत व्यक्त किया गया कि यह प्रतीत होता है कि उसके पश्चात् अपीलार्थियों द्वारा किसी तरह मृतक को काबू किया गया और उसे नि:शस्त्र किया गया । उसके पश्चात्, दोनों अपीलार्थियों ने गला घोंटकर उसकी मृत्यु कारित कर दी और शनाख्त में बाधा डालने के लिए उस पर तेजाब छिड़क दिया । तथापि, चूंकि गंभीर और अचानक प्रकोपन विद्यमान होने की प्रबल संभाव्यता थी, जो प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से दिखाई पड़ रहा था, इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304(II) के अधीन उपांतरित कर दिया गया और दोनों अभियुक्तों को तद्द्वारा पांच वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया ।

अपीलार्थियों द्वारा दी गई दलीलें

8. इस अपील में अपीलार्थियों ने यह दलील दी कि अपीलार्थी-अभियुक्तों की दोषिता को इंगित करते हुए स्पष्ट साक्ष्य के अभाव में, अवलंब ली गई साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 का गलत अर्थान्वयन किया गया है । अभियोजन पक्ष अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहा है और इसलिए सबूत के अपने भार का निर्वहन करने में असफल रहा है । अभियोजन पक्ष द्वारा अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहने पर उच्च न्यायालय अभियोजन पक्ष पर आबद्ध सबूत के भार का निर्वहन करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता था । अत: इस अपील में आक्षेपित निर्णय **शंभु नाथ मेहरा** बनाम **अजमेर राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई

[1] [1956] एस. सी. आर. 199.

विधि के उल्लंघन में है ।

9. इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने पूरी तरह से पारिस्थितिक साक्ष्य का अवलंब लेकर अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करने में गलती की थी । इसके अतिरिक्त, किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के अभाव में उच्च न्यायालय ने मृतक की मृत्यु के विवादग्रस्त समय के संबंध में अपीलार्थियों की दलील को खारिज करके भी गलती की थी ।

10. यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय यह मूल्यांकन करने में असफल रहा था कि डाक्टर द्वारा प्रस्तुत की गई मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार मृतक की मृत्यु उस समय हुई थी, जब अपीलार्थी मृतक द्वारा हमला किए जाने से उन्हें पहुंची क्षतियों के कारण अस्पताल में भर्ती थे । इसके अतिरिक्त, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपीलार्थियों द्वारा अपने कथनों में दिए गए उत्तरों का लिया गया अवलंब भ्रामक है, क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्नों के उत्तर साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं और अभियोजन पक्ष द्वारा इनका अवलंब नहीं लिया जा सकता है । (**देवेन्द्र कुमार सिंगला** बनाम **बलदेव सिंह सिंगला**[1] और **मोहन सिंह** बनाम **प्रेम सिंह और एक अन्य**[2] वाले मामले देखें) ।

11. अंत में यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय किसी ऐसी एकल घटना का अवलंब लेने में असफल रहा था, जिससे अपीलार्थियों की सहभागिता उपदर्शित होती हो, जिसके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हुई थी । इस प्रकार, निर्णय में ऐसा कोई प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष नहीं है जिससे उस घटना में अपीलार्थियों की सहभागिता उपदर्शित होती हो, जिसमें मृतक की मृत्यु हुई थी ।

प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा दी गई दलीलें

12. इस अपील में प्रत्यर्थी द्वारा यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने स्वीकृत तथ्यों, विश्वसनीय साक्ष्य, पक्षकारों के बीच संबंध विशिष्ट रूप से मृतक और अपीलार्थियों के पुत्री के बीच संबंध, उनके

---

[1] (2005) 9 एस. सी. सी. 15.

[2] (2002) 10 एस. सी. सी. 236.

दूरभाष पर संपर्क, मृतक और अपीलार्थी की पुत्री के बीच धन का आदान-प्रदान, मृतक की मृत्यु की तारीख, स्थान और समय, और अभियुक्त-अपीलार्थियों के मकान के किराए पर दिए गए भाग के अंदर मौजूदगी का अवलंब लेने के उपरांत ठीक ही यह मत व्यक्त किया था कि घटना अभियोजन पक्ष द्वारा अभिकथित समय और स्थान पर घटी थी, जिसमें अपीलार्थी निश्चित रूप से अंतर्ग्रस्त थे ।

13. इसके अतिरिक्त, यह ठीक ही मत व्यक्त किया गया था कि प्रथम संवर्ग के साक्षी घटनाओं का संपूर्ण ब्यौरा देने में असफल रहे थे । इसके अतिरिक्त, इस अपील में आक्षेपित निर्णय द्वारा यह ठीक ही मत व्यक्त किया गया था कि दूसरे संवर्ग के साक्षियों द्वारा दिया गया वृत्तांत अधिक विश्वसनीय था क्योंकि इससे मृतक और अपीलार्थियों के बीच संबंध सिद्ध हुआ था, जिसे एक सीमा तक इस अपील में अपीलार्थी के पति और पुत्री द्वारा स्वीकार किया गया था ।

14. यह भी दलील दी गई कि अभिलेख पर के तथ्यों और सामग्री के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि इस अपील में अपीलार्थियों के सिवाए कोई और घटनास्थल पर मौजूद नहीं था और इसलिए अपीलार्थियों को विशेष ज्ञान होने के कारण साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के प्रति ठीक ही निर्देश किया गया था । विचारण न्यायालय ने **राजेन्द्र कुमार** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए इस न्यायालय के निर्णय पर अभियोजन पक्ष द्वारा लिए गए अवलंब की पुष्टि करते हुए साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को भी निर्दिष्ट किया था । अत: अपीलार्थियों द्वारा दी गई ये दलीलें कि अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 का कोई अवलंब नहीं लिया गया था, असत्य हैं ।

15. **त्रिमुख मरोति किरकन** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने अपने निर्णय में यह भी मत व्यक्त किया था :–

"15. जहां हत्या जैसा अपराध किसी मकान के अंदर गुप्त

---

[1] (2003) 10 एस. सी. सी. 21.

[2] (2006) 10 एस. सी. सी. 681.

रूप से कारित किया जाता है, वहां मामले को सिद्ध करने का आरंभिक भार, निस्संदेह, अभियोजन पक्ष पर होगा किंतु आरोप को सिद्ध करने के लिए उसके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य की प्रकृति और मात्रा उतनी नहीं हो सकती है, जितनी पारिस्थितिक साक्ष्य के अन्य मामलों में अपेक्षित होती है । यह भार तुलनात्मक रूप से हल्के स्वरूप का होगा । साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को देखते हुए, मकान के निवासियों पर तत्समान यह भार होगा कि एक तर्कपूर्ण स्पष्टीकरण दें कि कैसे अपराध कारित हुआ था । मकान के निवासी केवल चुप रहकर और इस अनुमित आधार पर छुटकारा नहीं पा सकते हैं कि अपने पक्षकथन को सिद्ध करने का भार पूर्णतया अभियोजन पक्ष पर होता है और अभियुक्त पर कोई स्पष्टीकरण देने का कतई कोई कर्तव्य नहीं है ।"

16. इसके अतिरिक्त, यह दलील दी गई कि चिकित्सा विशेषज्ञ (अभि. सा. 6) के अभिसाक्ष्य के अनुसार कहीं यह उल्लेख नहीं किया गया है कि मृतक की मृत्यु तब हुई थी, जब अपीलार्थी क्षतिग्रस्त हालत में पड़े हुए थे । इसके अतिरिक्त, सभी साक्षियों के कथन संगत हैं और छुटपुट विरोधाभास अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को पूर्णतया नामंजूर करने का आधार नहीं हो सकते हैं । इस प्रकार, तथ्यों का परिशीलन करने मात्र से यह निश्चायक रूप से सिद्ध किया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने घटनाओं की श्रृंखलाओं को युक्तियुक्त संदेह के परे सफलतापूर्वक सिद्ध किया है । अपीलार्थियों द्वारा गला घोंटकर मृत्यु कारित की गई थी और उसकी मृत्यु के उपरांत शव पर तेजाब छिड़कर उसकी शनाख्त को छिपाने का प्रयत्न किया गया था ।

विश्लेषण

17. सुसंगत तथ्यों और इस अपील में अपीलार्थियों और प्रत्यर्थी द्वारा दी गई दलीलों का परिशीलन करने के पश्चात् हमारी सुविचारित राय में, प्रस्तुत मामले में मुख्य विवाद्यक, जिसका अवधारण किया जाना अपेक्षित है, यह है कि क्या अभियोजन पक्ष ने अपने सबूत के भार का सफलतापूर्वक निर्वहन किया है, और घटनाओं की श्रृंखला को सफलतापूर्वक सिद्ध किया गया है, जिससे साक्ष्य अधिनियम की धारा

106 के उपयोजन को लागू किया जा सके ।

18. साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 का आधार-तत्व यह है कि उन बातों को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर है, जो उस व्यक्ति के विशेष ज्ञान में है । यद्यपि यह धारा अभियोजन पक्ष को युक्तियुक्त संदेह के परे अपने सबूत के भार का निर्वहन करने से निर्मुक्त नहीं करती है, तो भी इसमें मात्र यह विहित किया गया है कि जब किसी व्यक्ति ने कोई कृत्य उस आशय से भिन्न किसी आशय से किया है जो परिस्थितियों से इंगित होता है, तब उस विनिर्दिष्ट आशय को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है न कि अभियोजन पक्ष पर । यदि अभियुक्त का एक भिन्न आशय था, तब उसके ज्ञान में विशेषत: तथ्यों को उसे साबित करना होगा ।

19. इस प्रकार, यद्यपि धारा 106 का उद्देश्य अभियोजन पक्ष को अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने के उसके भार से किसी प्रकार से छुटकारा देना नहीं है, तो भी यह धारा उन मामलों को लागू होती है, जहां अभियोजन पक्ष द्वारा घटनाओं की श्रृंखला को सफलतापूर्वक सिद्ध किया गया है, जिससे अभियुक्त के विरुद्ध एक युक्तियुक्त निष्कर्ष निकलता है । इसके अतिरिक्त, पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित किसी मामले में जब कभी अभियुक्त से अपराध में फंसाने वाला प्रश्न पूछा जाता है और वह या तो उत्तर देने से बचता है या बचती है, या ऐसा उत्तर दिया जाता है जो सत्य नहीं है, तब ऐसा उत्तर स्वयंमेव घटनाओं की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी बन जाती है । [**त्रिमुख मरोति किरकन** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** (उपर्युक्त) वाला मामला देखें] ।

20. प्रस्तुत मामले पर आते हैं । उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय द्वारा दोनों अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304(II) और 201 के अधीन दोषसिद्ध किया था । यह मत व्यक्त किया गया था कि अपीलार्थियों द्वारा मृतक की गला घोंटकर मृत्यु कारित की गई थी और इसके पश्चात् शव पर तेजाब छिड़कर उसकी शनाख्त को छिपाने का प्रयत्न किया गया था । पक्षकारों द्वारा दी गई सुसंगत दलीलों और उनके साथ प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर निम्न प्रकार से चर्चा की गई है ।

21. प्रथमत:, अभि. सा. 9 (मकान मालिक) के कथन का अवलंब लिया गया था, जिसमें विनिर्दिष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया था कि अभियुक्त-अपीलार्थियों को अंत:संबद्ध दरवाजे से बचाने के तुरंत पश्चात् अभियुक्त-अपीलार्थियों के मकान में सबसे पहले प्रवेश करने वाले पुलिस के सदस्य थे, जबकि मृतक मकान के अंदर ही था । अत: अभि. सा. 9 के कथन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मृतक की मृत्यु के समय पर मकान के अंदर केवल अभियुक्त-अपीलार्थी मौजूद थे । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थियों की इस दलील को कि इकट्ठा हो गए लोगों ने वास्तव में मृतक पर हमला किया था और उसके चेहरे को विकृत कर दिया था, उच्च न्यायालय ने इस दावे के समर्थन में दिए गए किसी तात्विक साक्ष्य के न होने के कारण ठीक ही नामंजूर किया था ।

22. उसके पश्चात् मृतक की बहिन-गीतांजलि राणा (अभि. सा. 12) के परिसाक्ष्य का अवलंब लिया गया, जिसने यह कथन किया था कि मृतक एक स्वर्णकार था और उसकी आभूषण की दुकान थी । इस साक्षी ने यह भी कथन किया था कि मृतक के अपीलार्थियों की पुत्री के साथ प्रेम संबंध थे और वह प्राय: एक महीने में एक या दो बार उसके मकान पर जाता रहता था । यह भी कथन किया गया था कि मृतक ने अपीलार्थियों की पुत्री (अभियुक्त सं. 3) को 70,000/- रुपए की रकम दी थी क्योंकि उसने उससे मदद मांगी थी । मृतक अभियुक्त सं. 3 से विवाह करना चाहता था, तथापि, एक बैंक में नौकरी मिलने के उपरांत अपीलार्थियों की पुत्री ने मृतक की अनदेखी करनी शुरु कर दी और उसकी कुण्ठा बढ़ने लगी । मृतक की बहिन ने अपने कथन में आगे यह भी कथन किया कि मृतक अपनी मृत्यु से पूर्व यह चीखते हुए घर से गया था कि वह या तो अपीलार्थियों की पुत्री के साथ वापस आएगा या अपना धन वापस लेगा । इस कथन की पुष्टि अभि. सा. 7 और अभि. सा. 8 द्वारा भी की गई थी, जो क्रमश: मृतक का मित्र और चचेरा भाई था । अत: उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही यह मत व्यक्त किया गया था कि इन दूसरे संवर्ग के साक्षियों के कथन से अपराध कारित करने के हेतु का पता चलता है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि अभियुक्त अपीलार्थियों द्वारा किया गया यह दावा भी मिथ्या है कि मृतक उन्हें नहीं जानता था, विशेष रूप से इस बात पर विचार करते हुए कि उनकी

पुत्री (अभियुक्त सं. 3) ने अपने अभिसाक्ष्य में यह स्वीकार किया था कि मृतक अपीलार्थियों के मकान पर आता रहता था ।

23. इसके अतिरिक्त, चिकित्सा विशेषज्ञ (अभि. सा. 6) के कथन को भी ध्यान में रखना आवश्यक है, जिसने यह प्रकटन किया था कि मृतक की मृत्यु का कारण गर्दन के निचले भाग को दबाने की वजह से श्वासनली का उपरी सिरा अवरुद्ध होने के कारण श्वासोवरुद्ध हो जाना था । यह राय व्यक्त की गई थी कि मृतक पर दो या तीन व्यक्तियों द्वारा हमला किया गया था और क्षतियां मानववध प्रकृति की थी ।

24. अत: प्रस्तुत मामले में, अभियोजन पक्ष अपराध कारित करने के लिए अपीलार्थियों के आशय को सिद्ध करने में सफल रहा था । ऐसे आशय का विश्लेषण जब सभी संवर्ग के साक्षियों द्वारा किए गए कथनों और सुसंगत स्थान और समय पर मृतक को पहुंची घातक क्षतियों को ध्यान में रखते हुए विश्लेषण किया जाए, तो निश्चित रूप से यह एक मजबूत मामला सिद्ध होता है कि मृतक की मृत्यु वास्तव में अपीलार्थियों द्वारा कारित की गई थी । अत: जब एक बार अभियोजन पक्ष ने घटनाओं की श्रृंखला को सफलतापूर्वक सिद्ध कर दिया था, तो इसे अन्यथा साबित करने का भार अपीलार्थी पर था । अत: उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह मत व्यक्त किया था कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को ध्यान में रखते हुए यह प्रकट करने का भार अब अपीलार्थियों पर था कि कैसे मृतक को अपनी जान गंवानी पड़ी थी ।

25. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने **अशोक** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया था :–

> "12. ऊपर उल्लिखित निर्णयों और इस न्यायालय द्वारा वर्षों से दिए गए बहुत सारे अन्य निर्णयों के अध्ययन से नियम का जो संक्षिप्त सार निकाला जा सकता है, यह है कि सबूत का यह आरंभिक भार अभियोजन पक्ष पर होता है कि वह अभियुक्त की दोषिता को इंगित करते हुए पर्याप्त साक्ष्य लाए । तथापि, अंतिम बार देखे जाने की दशा में अभियोजन पक्ष को घटना घटित होने के बारे में हू-ब-हू साबित करने के लिए छूट प्राप्त है । क्योंकि स्वयं

[1] (2015) 4 एस. सी. सी. 393.

अभियुक्त को ही घटना का विशेष ज्ञान रहा होगा और इस प्रकार साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के अनुसार उस पर यह सबूत का भार होगा । अत: अंतिम बार एकसाथ देखा जाना स्वत: एक निश्चायक सबूत नहीं है किंतु घटना की अन्य परिवेशी परिस्थितियों, जैसे अभियुक्त और मृतक के बीच संबंध, उनके बीच दुश्मनी, विद्वेष का पूर्ववर्ती इतिहास, अभियुक्त से आयुध की बरामदगी आदि, मृतक की मृत्यु के बारे में कोई स्पष्टीकरण न देने से दोषिता की उपधारणा की जा सकती है ।"

26. अत: उपरोक्त तथ्यों और इनके साथ उल्लिखित कारणों को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि घटनाओं का संपूर्ण क्रम प्रबल रूप से अभियुक्त-अपीलार्थियों की दोषिता को इंगित करता है और अपीलार्थी इस संबंध में कोई विश्वसनीय प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने में असफल रहे हैं । घटनाओं की संपूर्ण श्रृंखला अपीलार्थियों की दोषिता की ओर इंगित करती है । अत: हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय में कोई गलती नहीं पाते हैं । तद्नुसार, ये अपीलें खारिज की जाती हैं ।

27. दोनों अभियुक्तों के जमानत बंधपत्र रद्द किए जाते हैं और उन्हें आज से दो सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करने का निदेश दिया जाता है, जिसमें असफल रहने पर उन्हें उक्त प्रयोजन के लिए पुलिस अभिरक्षा में लिया जाएगा ।

अपीलें खारिज की गईं ।

जस.

[2022] 2 उम. नि. प. 294

चंद्रपाल

बनाम

छत्तीसगढ़ राज्य (पूर्वतर में मध्य प्रदेश)

[2015 की दांडिक अपील सं. 378]

27 मई, 2022

न्यायमूर्ति डा. धनंजय वाई. चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति बेला एम. त्रिवेदी

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 201/34 – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – अभियुक्त-अपीलार्थी की बहिन और एक लड़के के बीच प्रेम संबंध होना – अभियुक्त और सह-अभियुक्तों के विरुद्ध दोनों की हत्या करने और फिर शवों को आत्महत्या दर्शित करने के लिए एक पेड़ से लटकाए जाने का अभिकथन किया जाना – मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में मृतकों की मृत्यु आत्महत्या से होने की संभावना व्यक्त किया जाना – अभियुक्त-अपीलार्थी को अंतिम बार मृतक के साथ देखे जाने का अभिकथन किया जाना – अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को कायम रखा जाना और सह-अभियुक्तों की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त करते हुए धारा 201/34 के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि किया जाना और पहले ही भुगत ली गई अवधि तक दंडादिष्ट किया जाना – अभियुक्त द्वारा दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील – जहां अभियोजन पक्ष का साक्ष्य मृतक की मानववध मृत्यु के सबूत के लिए कम पड़ता है और यदि आत्महत्या से मृत्यु की संभाव्यता को नकारा न जा सकता हो, वहां अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोप युक्तियुक्त संदेह के परे साबित न होने के कारण उसे मात्र अंतिम बार मृतक के साथ देखे जाने की कहानी के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है और उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 और 201/34 – हत्या – अभियुक्त-अपीलार्थी की बहिन और एक लड़के के बीच प्रेम संबंध होना – अभियुक्त और सह-अभियुक्तों के विरुद्ध दोनों की हत्या करने और फिर शवों को आत्महत्या दर्शित करने के लिए एक पेड़ से लटकाए जाने का अभिकथन किया जाना – सह-अभियुक्त द्वारा अपराध की न्यायिकेतर संस्वीकृति किया जाना – दोषसिद्धि – साक्ष्यिक महत्व – चूंकि न्यायिकेतर संस्वीकृति एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य होता है और जब तक इससे विश्वास प्रेरित न होता हो या किसी अन्य सटीक साक्ष्य द्वारा इसकी संपुष्टि न होती हो और जहां अभियुक्त के विरुद्ध कोई सारभूत साक्ष्य न हो, वहां सह-अभियुक्त द्वारा अभिकथित रूप से की गई अपराध की न्यायिकेतर संस्वीकृति महत्वहीन हो जाती है और ऐसी न्यायिकेतर संस्वीकृति के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जाना उचित नहीं होगा ।

इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि मृतका कुम्हार जाति की थी और मृतक सिद्दार (गौर) जाति का था तथा उनके बीच प्रेम संबंध चल रहे थे जो उसके भाई चंद्रपाल (अपीलार्थी-अभियुक्त) और उसके पिता को पसंद नहीं थे । तारीख 2 दिसंबर, 1994 को दोनों गायब हो गए । खोजबीन की गई, तथापि, कोई गुमशुदा रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई । तारीख 11 दिसंबर, 1994 को दोनों के शव एक पेड़ पर लटके हुए पाए गए । उनके शव सड़ी हुई हालत में थे और शनाख्त योग्य नहीं थे, तथापि, इत्तिलाकर्ता चंद्रपाल ने शवों की शनाख्त की । उसके पश्चात् तारीख 11 दिसंबर, 1994 को मर्ग सूचनाएं दर्ज की गईं । शवों को मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा गया । दोनों मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्टों में यह कहा गया कि मृत्यु 8 से 10 दिन के भीतर हुई है और मृत्यु आत्महत्या प्रकृति की है । अभियोजन का यह भी पक्षकथन था कि अभियुक्त चंद्रपाल ने कन्हैया को बुलाया था और उसे अपने घर ले गया था और फिर सभी अभियुक्तों अर्थात् भागीरथी, चंद्रपाल, मंगल सिंह और विदेशी ने अपने सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए उसकी गर्दन को दबाया और उसकी हत्या कर दी । उसके पश्चात्, अभियुक्त मंगल सिंह और विदेशी ने कुमारी बृंदा की हत्या की । उनकी हत्याएं करने के

पश्चात्, उन्होंने कन्हैया और बृंदा के शवों को तारीख 4 दिसंबर, 1994 तक मकान में रखा और फिर शवों को काजूबाड़ी ले गए । उसके पश्चात् अभियुक्तों ने दोनों मृतकों के शवों को उनके गले में फंदा डालकर काजूबाड़ी में काजू के पेड़ से लटका दिया और इसे उनके द्वारा आत्महत्या करने का आकार देने का प्रयत्न किया । सेशन न्यायालय ने चारों अभियुक्तों अर्थात् भागीरथी, चंद्रपाल, मंगल सिंह और विदेशी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और अनुकल्पत: भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आरोप विरचित किया । प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, रायपुर (छत्तीसगढ़) ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् तारीख 3 अगस्त, 1998 के निर्णय और आदेश द्वारा सभी अभियुक्तों को उनके विरुद्ध अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के अधीन लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया, तथापि, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 201 के अधीन अपराधों का दोषी पाया । उन सभी को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास का दंडादेश दिया और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 201 के अधीन अपराध के लिए दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का निदेश दिया । सेशन न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित होकर अभियुक्तों द्वारा छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के समक्ष अपीलें फाइल की गईं । उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त सं. 2 चंद्रपाल पर भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 201 के अधीन अपराध के लिए अधिरोपित दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की गई और तद्नुसार उसकी अपील को खारिज कर दिया । तथापि, उच्च न्यायालय ने अभियुक्त भागीरथी कुम्हार, मंगल सिंह और विदेशी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अधिरोपित दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया, तो भी भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा

201 के अधीन अपराध के लिए उनकी दोषसिद्धि की पुष्टि की और उन सभी को उनके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि तक के लिए दंडादिष्ट किया । वर्तमान अपीलार्थी-अभियुक्त चंद्रपाल द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा पारित उक्त निर्णय और आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आरोप को साबित करने के प्रयोजनार्थ अभियोजन पक्ष को "मानववध मृत्यु" को एक प्राथमिक तथ्य के रूप में अवश्य सिद्ध करना चाहिए । किसी अभियुक्त को धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करने के लिए न्यायालय को सर्वप्रथम देखना चाहिए कि क्या अभियोजन पक्ष ने मानववध मृत्यु के तथ्य को साबित किया है । जहां तक प्रस्तुत मामले के तथ्यों का संबंध है, अभि. सा. 13 डा. आर. के. सिंह, जिसने मृतकों बृंदा और कन्हैया की मरणोत्तर परीक्षा की थी, का साक्ष्य इस संबंध में सर्वाधिक सुसंगत होगा । उसने न्यायालय के समक्ष अपने अभिसाक्ष्य में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह कथन किया था कि उसने तारीख 12 दिसंबर, 1994 को कुमारी बृंदा पुत्री भागीरथी और कन्हैया **उर्फ** चंद्रशेखर गौर की मरणोत्तर परीक्षा की थी । दोनों मृतकों के शव सड़ी हालत में थे । उसने यह भी कथन किया था कि मृतका बृंदा की गर्दन पर मौजूद गांठ बांधने का चिह्न मृत्यु-पूर्व का था और मृत्यु का कारण फांसी लगाने के कारण श्वसावरोध होना प्रतीत होता था । मृत्यु 8 से 10 दिन के भीतर हुई थी और मृत्यु आत्महत्या की प्रकृति की थी । उक्त डाक्टर ने कन्हैया के लिए भी इसी प्रकार के तथ्यों का कथन किया था कि कन्हैया का शव उसकी गर्दन से बांयी तरफ मुड़ा हुआ पाया था और गर्दन पर 10 इंच x 5 इंच आकार का एक बांधने का चिह्न था । मृत्यु का कारण फांसी लगाने के कारण श्वासोवरुद्ध होना प्रतीत होता था और मृत्यु 8 से 10 दिन के भीतर हुई प्रतीत होती थी । उसने यह भी कथन किया था कि मृतकों के शवों पर न तो अस्थिभंग पाया गया था, न ही कोई रक्त के थक्के पाए गए थे, न ही कोई क्षतियां पाई गई थीं और इसलिए उसने यह राय व्यक्त की थी कि मृत्यु का कारण

फांसी लगाना था, जो कि प्रसामान्यत: आत्महत्या के मामले में पाया जाता है । उसने विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया था कि चूंकि शव सड़ गए थे इसलिए वह इस बारे में कोई राय व्यक्त नहीं कर सका था कि क्या यह एक मानववध मृत्यु थी । अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा की गई प्रतिपरीक्षा में उसने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया था कि उसे मानववध मृत्यु का कोई लक्षण नहीं पाया था, न ही उसने तारीख 12 दिसंबर, 1994 को दी गई अपनी रिपोर्ट में यह राय व्यक्त की थी कि मृतकों की मौतें मानववध थीं । निस्संदेह, उसने यह कथन किया था कि तारीख 30 अप्रैल, 1995 को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मृत्यु मानववध मृत्यु हो सकती हैं । यह उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि की पुष्टि करने से पूर्व आक्षेपित निर्णय में डा. आर. के. सिंह के साक्ष्य पर इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कतई विचार नहीं किया था कि क्या मृत्यु मानववध मृत्यु थीं । दुर्भाग्यवश, सेशन न्यायालय ने भी अपने निर्णय के पैरा 23 में यह मत व्यक्त किया था कि डा. आर. के. सिंह का कथन महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि उसने एक राय व्यक्त की थी जो न तो अभियोजन पक्ष के लिए फायदेप्रद है और न ही प्रतिरक्षा पक्ष के लिए । हमारी राय में, जब अभियोजन का पक्षकथन पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित था, तो अभियोजन पक्ष के लिए यह आवश्यक था कि वह युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित करे कि मृतकों की मृत्यु मानववध मृत्यु थीं न कि आत्महत्या, विशिष्ट रूप से जब अभियुक्त द्वारा ली गई प्रतिरक्षा यह थी कि बृंदा और कन्हैया ने आत्महत्या की थी और जब डा. आर. के. सिंह, जिसने उनकी मरणोत्तर परीक्षाएं की थीं, ने भी यह राय व्यक्त की थी कि उनकी मृत्यु आत्महत्या की प्रकृति की हैं । यह बात इस न्यायालय को अभियोजन पक्ष द्वारा अवलंब लिए गए अपराध में फंसाने वाले साक्ष्य अर्थात् सह-अभियुक्त विदेशी द्वारा की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति की परीक्षा करने की ओर ले जाती है । अभियोजन पक्ष के अनुसार, अभियुक्त विदेशी ने अभि. सा. 4 भोला सिंह के समक्ष आत्म-अभिशंसी संस्वीकृति की थी

और वर्तमान अपीलार्थी सहित अन्य अभियुक्तों को अंतर्ग्रस्त करते हुए अभि. सा. 5 चंद्रशेखर, अभि. सा. 6 बरन सिंह और अभि. सा. 7 डुकलुराम के समक्ष भी संस्वीकृति की थी । अभियोजन पक्ष ने विदेशी का एक शपथपत्र (प्रदर्श पी/11) भी प्रस्तुत किया था, जिसे अभिकथित रूप से नोटरी के समक्ष प्रतिज्ञात किया गया था । यद्यपि विचारण न्यायालय ने विदेशी के न्यायिकेतर संस्वीकृति के उक्त साक्ष्य का अवलंब लेने के उपरांत सभी चारों अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया था, तो भी उच्च न्यायालय ने उक्त न्यायिकेतर संस्वीकृति पर भागत: विश्वास करते हुए तीन अभियुक्तों अर्थात् भागीरथी, मंगल सिंह और विदेशी को उनके विरुद्ध लगाए गए भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया था, तथापि, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 201 के अधीन अपराध के लिए यह अभिनिर्धारित करते हुए दोषसिद्ध किया था कि उक्त अभियुक्तों ने साक्ष्य छिपाने की कोशिश की थी । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जा सकता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 30 के अनुसार जब एक से अधिक व्यक्तियों का एक ही अपराध के लिए संयुक्त रूप से विचारण किया जा रहा हो और ऐसे व्यक्तियों में से किसी एक के द्वारा अपने को और ऐसे व्यक्तियों में से किसी अन्य को प्रभावित करने वाली की गई संस्वीकृति को साबित किया जाता है, तब न्यायालय ऐसी संस्वीकृति को ऐसे अन्य व्यक्ति के विरुद्ध तथा ऐसी संस्वीकृति करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध विचार में ले सकेगा । तथापि, इस न्यायालय ने सतत् रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति कमजोर प्रकार का साक्ष्य है और जब तक इससे विश्वास प्रेरित न होता हो या विश्वसनीय प्रकृति के किसी अन्य साक्ष्य द्वारा पूरी तरह संपुष्टि न होती हो, तो सामान्यतया हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्धि केवल न्यायिकेतर संस्वीकृति के साक्ष्य के आधार पर नहीं की जानी चाहिए । प्रस्तुत मामले में, यह सही है कि सह-अभियुक्त विदेशी ने अभि. सा. 4 भोला सिंह के समक्ष अभिकथित रूप से आत्म-अभिशंसी न्यायिकेतर संस्वीकृति की थी और अन्य साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 5 चंद्रशेखर, अभि. सा. 6 बरन सिंह ठाकुर और अभि. सा. 7

डुकलुराम के समक्ष, अन्य बातों के साथ-साथ, यह न्यायिकेतर संस्वीकृति की थी कि अन्य तीन अभियुक्तों अर्थात् भागीरथी, चंद्रपाल और मंगल सिंह ने हत्या कारित की थी और उसे (विदेशी) शवों को ठिकाने लगाने में और साक्ष्य छिपाने में उनकी सहायता करने के लिए कहा था । तथापि, उच्च न्यायालय ने सह-अभियुक्त विदेशी द्वारा की गई उक्त दो न्यायिकेतर संस्वीकृति के बीच असंगति होने की बात पर विचार करते हुए अन्य अभियुक्तों अर्थात् भागीरथी, मंगल सिंह और स्वयं विदेशी को दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं समझा और उच्च न्यायालय ने आश्चर्यजनक रूप से विदेशी द्वारा की गई उक्त न्यायिकेतर संस्वीकृति को अपीलार्थी चंद्रपाल के विरुद्ध आरोपित अपराधों के लिए उसे दोषसिद्ध करने हेतु उसके विरुद्ध एक अपराध में फंसाने वाली परिस्थिति समझा । इस न्यायालय की राय में, यदि सह-अभियुक्त विदेशी का ऐसा कमजोर साक्ष्य अन्य सह-अभियुक्तों को मृतक बृंदा और कन्हैया की हत्या कारित करने का दोषी ठहराने के लिए सम्यक् रूप से साबित नहीं हुआ था या विश्वसनीय नहीं पाया गया था, तो उच्च न्यायालय उक्त साक्ष्य का प्रयोग वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध उसे अभिकथित अपराध के लिए दोषी ठहराने के प्रयोजन के लिए नहीं कर सकता था । यह बात इस न्यायालय को अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई "एकसाथ देखे जाने" की कहानी की परीक्षा करने की ओर अग्रसर करती है । अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, अभि. सा. 1 धनसिंह ने दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को अभियुक्त चंद्रपाल को मृतक कन्हैया को बुलाते हुए और उसे अपने मकान के अंदर ले जाते हुए देखा था । इस तथ्य के अतिरिक्त कि उक्त धनसिंह ने उस समय और तारीख के बारे में उल्लेख नहीं किया था, जब उसने कन्हैया को अंतिम बार चंद्रपाल के साथ देखा था, यदि यह मान भी लिया जाए कि जब चंद्रपाल ग्राम पंचायत के परिसर में बैठा हुआ था, तब उसने चंद्रपाल को कन्हैया को बुलाते हुए देखा था, तो भी उक्त घटना उस दिन से दस दिन पूर्व घटी थी, जब मृतकों के शव पाए गए थे । दो घटनाओं अर्थात् उस दिन जब धनसिंह ने चंद्रपाल को कन्हैया को अपने मकान पर बुलाते हुए देखा था और उस दिन जब कन्हैया का शव पाया गया था, के बीच समय अंतराल काफी लंबा होने के कारण

वर्तमान अपीलार्थी को अभिकथित अपराध से संपृक्त करना कठिन है, विशिष्ट रूप से जब अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया कोई अन्य विश्वसनीय और तर्कपूर्ण साक्ष्य नहीं है । अत: अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की यह राय है कि उच्च न्यायालय ने सह-अभियुक्त विदेशी द्वारा अभिकथित रूप से की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति के एक बहुत ही कमजोर प्रकार के साक्ष्य का अवलंब लेते हुए और अभि. सा. 1 धनसिंह द्वारा प्रस्तुत की गई "अंतिम बार एकसाथ देखे जाने" की कहानी का अवलंब लेते हुए अपीलार्थी-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अभिकथित अपराध के लिए दोषसिद्ध करके गंभीर गलती की थी । यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है कि कैसे और किसके द्वारा मृतका बृंदा की अभिकथित रूप से हत्या की गई थी । इन परिस्थितियों में, यह अभिनिर्धारित किया जाना आवश्यक है कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में पूरी तरह से असफल रहा था । संदेह चाहे कितना भी मजबूत हो, सबूत का स्थान नहीं ले सकता है । (पैरा 8, 9, 10, 11, 12, 13 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 6 एस. सी. सी. 403 : **सहदेवन और एक अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	12
[2012]	(2012) 11 एस. सी. सी. 768 : **जगरूप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	12
[2011]	(2011) 11 एस. सी. सी. 754 : **एस. के. युसुफ** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	12
[2011]	(2011) 10 एस. सी. सी. 165 : **पंचो** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	12

[2005] (2005) 3 एस. सी. सी. 169 :
मध्य प्रदेश राज्य मार्फत केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो और अन्य बनाम **पल्टन मल्लाह और अन्य** ; 11

[2005] (2005) 12 एस. सी. सी. 438 :
जसवंत गिर बनाम **पंजाब राज्य** ; 16

[2002] (2002) 8 एस. सी. सी. 45 :
बोधराज और अन्य बनाम **जम्मू और कश्मीर राज्य ;** 15

[1994] (1994) 2 सप्ली. एस. सी. सी. 372
अर्जुन मारिक और अन्य बनाम **बिहार राज्य** ; 17

[1985] [1985] 1 उम. नि. प. 995 =
(1984) 4 एस. सी. सी. 116 :
शरद बिरधीचंद शारदा बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 7

[1973] [1973] 3 उम. नि. प. 1011 =
(1973) 2 एस. सी. सी. 793 :
शिवाजी साहबराव बोबडे और एक अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 7

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की दांडिक अपील सं. 378.

1998 की दांडिक अपील सं. 1812 में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 25 मार्च, 2014 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अक्षत श्रीवास्तव, (सुश्री) पूजा श्रीवास्तव और सात्विक माथुर

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री सौरभ राय, उप महाधिवक्ता, महेश कुमार, कौशल शर्मा, (सुश्री) देविका खन्ना और (श्रीमती) वी. डी. खन्ना

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बेला एम. त्रिवेदी ने दिया ।

न्या. त्रिवेदी – यह अपील 1998 की दांडिक अपील सं. 1812 में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर द्वारा पारित दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, मृतका कुमारी बृंदाबाई भागीरथी कुम्हार की पुत्री थी, जो कुम्हार जाति की थी । मृतक कन्हैया सिद्दार गांव पंझार का निवासी था और सिद्दार (गौर) जाति का था । कुमारी बृंदा और कन्हैया सिद्दार के बीच प्रेम संबंध चल रहे थे, जो उक्त भागीरथी और उसके भाई चंद्रपाल को पसंद नहीं थे । तारीख 2 दिसंबर, 1994 को कुमारी बृंदा और कन्हैया दोनों गायब हो गए । खोजबीन की गई, तथापि, कोई गुमशुदा रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी । तारीख 11 दिसंबर, 1994 को लगभग 9.00 बजे पूर्वाह्न में लोधू (अभि. सा. 2) काजूबाड़ी (काजू नर्सरी) गया और देखा कि मृतका कुमारी बृंदा और कन्हैया के शव एक काजू के पेड़ पर लटक रहे थे । इसलिए वह वापस आया और सरपंच बरन सिंह ठाकुर को सूचित किया । उनके शव सड़ी हुई हालत में थे और शनाख्त योग्य नहीं थे, तथापि, इत्तिलाकर्ता चंद्रपाल ने शवों की शनाख्त की । उसके पश्चात् चंद्रपाल और भोलासिंह (अभि. सा. 4) द्वारा तारीख 11 दिसंबर, 1994 को लगभग 4.00 बजे और 4.05 बजे अपराह्न में मर्ग सूचनाएं दर्ज की गईं, जिन्हें क्रमश: सं. 67/94 और 68/94 पर रजिस्ट्रीकृत किया गया । शवों को मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा गया । डा. आर. के. सिंह (अभि. सा. 13) द्वारा की गई मृतक कुमारी बृंदा की मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी/22) में यह राय व्यक्त की गई थी कि उसकी गर्दन पर बांधने का चिह्न मृत्यु-पूर्व प्रकृति का था और मृत्यु का कारण फांसी लगाने के कारण श्वासावरुद्ध होना प्रतीत होता है । मृतक कन्हैया की मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी/13) में भी यह राय व्यक्त की गई थी कि मृत्यु का कारण फांसी लगाने के कारण श्वासावरुद्ध होना प्रतीत होता है । दोनों मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्टों में यह कहा गया था कि मृत्यु 8 से 10 दिन के भीतर हुई है और मृत्यु आत्महत्या प्रकृति की है । अभियोजन के और

आगे पक्षकथन के अनुसार, तारीख 2 दिसंबर, 1994 को मृतक कन्हैया ग्राम पंचायत के परिसर में बैठा हुआ था, जहां टेलीविजन पर कोई कार्यक्रम चल रहा था । उसके पश्चात् वह उस स्थान से चला गया और अपनी कुल्हाड़ी (गंडासु) की धार लगाने के लिए हैंड-पंप पर गया था । उस समय अभियुक्त चंद्रपाल ने कन्हैया को बुलाया और उसे अपने घर ले गया, दरवाजा बंद करके कमरे में गिरा दिया और सभी अभियुक्तों अर्थात् भागीरथी, चंद्रपाल, मंगल सिंह और विदेशी ने अपने सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए उसकी गर्दन को दबाया और उसकी हत्या कर दी । उसके पश्चात्, अभियुक्त मंगल सिंह और विदेशी ने कुमारी बृंदा की हत्या की । उनकी हत्याएं करने के पश्चात्, उन्होंने कन्हैया और बृंदा के शवों को तारीख 4 दिसंबर, 1994 तक मकान में रखा और फिर शवों को काजूबाड़ी ले गए । उसके पश्चात् अभियुक्तों ने दोनों मृतकों के शवों को उनके गले में फंदा डालकर काजूबाड़ी में काजू के पेड़ से लटका दिया और इसे उनके द्वारा आत्महत्या करने का आकार देने का प्रयत्न किया ।

3. सेशन न्यायालय ने चारों अभियुक्तों अर्थात् भागीरथी, चंद्रपाल, मंगल सिंह और विदेशी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और अनुकल्पत: भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आरोप विरचित किया । प्रत्येक अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 201 के अधीन अपराध के लिए और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के अधीन अपराध के लिए भी अलग से आरोपित किया गया था । अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने के लिए 16 साक्षियों की परीक्षा की और दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत किया । प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, रायपुर (छत्तीसगढ़) ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् तारीख 3 अगस्त, 1998 के निर्णय और आदेश द्वारा सभी अभियुक्तों को उनके विरुद्ध अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के अधीन लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया, तथापि,

उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 201 के अधीन अपराधों का दोषी पाया । उन सभी को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास का दंडादेश दिया और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 201 के अधीन अपराध के लिए दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का निदेश दिया ।

4. सेशन न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त भागीरथी, चंद्रपाल और मंगल सिंह ने छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के समक्ष एक अपील, 1998 की दांडिक अपील सं. 1812 और अभियुक्त विदेशी ने एक अपील, 1998 की दांडिक अपील सं. 2005 फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अभियुक्त सं. 2 चंद्रपाल पर भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 201 के अधीन अपराध के लिए अधिरोपित दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की और तद्नुसार उक्त अभियुक्त चंद्रपाल से संबंधित 1998 की दांडिक अपील सं. 1812 को खारिज कर दिया । तथापि, उच्च न्यायालय ने अभियुक्त भागीरथी कुम्हार, मंगल सिंह और विदेशी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अधिरोपित दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया, तो भी भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 201 के अधीन अपराध के लिए उनकी दोषसिद्धि की पुष्टि की और उन सभी को उनके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि तक के लिए दंडादिष्ट किया । तद्नुसार, 1998 की दांडिक अपील सं. 1812 और 1998 की दांडिक अपील सं. 2005 को भागत: मंजूर किया गया । वर्तमान अपीलार्थी-अभियुक्त चंद्रपाल ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित उक्त निर्णय और आदेश से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है ।

5. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अक्षत श्रीवास्तव ने अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों,

विशिष्ट रूप से अभि. सा. 2, अभि. सा. 4, अभि. सा. 5 और अभि. सा. 6 के साक्ष्य की ओर इस न्यायालय का ध्यान दिलाते हुए यह दलील दी कि अभियुक्त विदेशी द्वारा उनके समक्ष की गई अभिकथित न्यायिकेतर संस्वीकृति के संबंध में उनके साक्ष्य में बड़े विरोधाभास थे । उन्होंने इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि सह-अभियुक्त द्वारा की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है, जो कि एक बहुत ही कमजोर प्रकार का साक्ष्य होता है । उन्होंने 'अंतिम बार देखे जाने की कहानी' के सिद्धांत को अस्वीकार करते हुए यह दलील दी कि अभि. सा. 1 धनसिंह, जिसने कन्हैया को वर्तमान अपीलार्थी द्वारा बुलाए जाने पर अभिकथित रूप से अंतिम बार उसके साथ देखा था, का कथन घटना के चार माह पश्चात् अभिलिखित किया गया था । यहां तक कि अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार भी, अपीलार्थी द्वारा कन्हैया को बुलाने की उक्त घटना उस तारीख से 10 दिन पूर्व की थी, जिस तारीख को शव काजूबाड़ी में पाए गए थे और जिस दिन मृतक को अभिकथित रूप से अंतिम बार अपीलार्थी के साथ देखा गया था और जिस दिन उसका शव पाया गया था, के बीच समय का लंबा अंतराल होने के कारण अपीलार्थी को एकमात्र रूप से ऐसे साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध करना बहुत ही जोखिम-भरा था । उन्होंने यह भी दलील दी कि डाक्टर, जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, ने यह भी राय व्यक्त की थी कि मृत्यु का कारण फांसी लगाने के परिणामस्वरूप श्वासोवरुद्ध हो जाना था और मृत्यु आत्महत्या प्रकृति की थी । इस प्रकार, अपीलार्थी के विरुद्ध किसी स्पष्ट और सटीक साक्ष्य के अभाव में दोनों न्यायालयों ने अपीलार्थी को दोषसिद्ध करके गंभीर गलती कारित की थी ।

6. तथापि, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी की दोषिता की बाबत सेशन न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष एक-जैसे होने के कारण यह न्यायालय उसमें हस्तक्षेप न करे । जबकि उचित रूप से यह मानते हुए कि न्यायिकेतर संस्वीकृति एक कमजोर साक्ष्य होता है, उन्होंने यह दलील दी कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत

किया गया अन्य संपुष्टिकारी साक्ष्य था, जिससे वर्तमान अपीलार्थी की दोषिता को इंगित करते हुए परिस्थितियों की संपूर्ण श्रृंखला निश्चायक रूप से साबित हुई थी । उनके अनुसार, तारीख 2 दिसंबर, 1994 को अभिकथित घटना के पश्चात् तारीख 11 दिसंबर, 1994 को शवों की बरामदगी होने तक किसी व्यक्ति ने मृतकों बृंदा और कन्हैया को गांव में नहीं देखा था और इसलिए अभि. सा. 1 धनसिंह, जिसने कन्हैया को अंतिम बार वर्तमान अपीलार्थी के साथ देखा था, के साक्ष्य पर विश्वास किया जाना चाहिए, जैसा कि निचले न्यायालयों द्वारा विश्वास किया गया है । उनके अनुसार, संबंधित डाक्टर, जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, ने भी यह राय व्यक्त की थी कि मृतकों की मृत्यु मानववध मृत्यु भी हो सकती है ।

7. प्रारंभ में, यह उल्लेख किया जा सकता है कि निर्विवाद रूप से अभियोजन का संपूर्ण पक्षकथन पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है, क्योंकि अभिकथित घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं था । पारिस्थितिक साक्ष्य का मूल्यांकन करने से संबंधित विधि भी भली-भांति स्थिर है । जैसा कि **शिवाजी साहबराव बोबडे और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, संबंधित परिस्थितियों को सिद्ध करना "आवश्यक है या किया जाना चाहिए" न कि सिद्ध "किया जा सकता है" । इससे पूर्व कि किसी न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जा सके, वह "अवश्य" दोषी होना चाहिए न कि मात्र दोषी "हो सकता है" । दोषिता के निकाले गए निष्कर्ष अवश्य निश्चित निष्कर्ष होने चाहिएं और अस्पष्ट अटकलबाजियों पर आधारित नहीं होने चाहिएं । परिस्थितियों की संपूर्ण श्रृंखला, जिसके आधार पर दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है, पूरी तरह से सिद्ध होनी चाहिए और अभियुक्त की निर्दोषिता के संगत निष्कर्ष के लिए कोई युक्तियुक्त आधार नहीं बचना चाहिए । **शरद बिरधीचंद शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में प्रगणित पैरा 152 में अधिकथित पांच स्वर्णिम

---

[1] [1973] 3 उम. नि. प. 1011 = (1973) 2 एस. सी. सी. 793.

[2] [1985] 1 उम. नि. प. 995 = (1984) 4 एस. सी. सी. 116.

सिद्धांतों को तुरंत संदर्भ के लिए इसमें उद्धृत किया जा सकता है :–

"152. इस विनिश्चय के सूक्ष्म-विश्लेषण से पता चलता है कि अभियुक्त के प्रतिकूल मामले को पूरी तरह सिद्ध मानने से पहले निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी चाहिएं :

(1) वे परिस्थितियां, जिनसे दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है, पूरी तरह सिद्ध की जानी चाहिएं ।

यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस न्यायालय ने यह इंगित किया था कि संबंधित परिस्थितियां 'सिद्ध करनी होंगी' या 'की जानी चाहिएं न कि की जा सकती हैं' । 'साबित की जा सकती हैं' और 'साबित करनी होंगी या की जानी चाहिएं' में केवल व्याकरणिक अंतर ही नहीं है, बल्कि विधिक अंतर है, जैसा कि इस न्यायालय ने शिवाजी साहबराव और एक अन्य **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [1973] 3 उम. नि. प. 1011 = (1973) 2 एस. सी. सी. 793. में अभिनिर्धारित किया था । उसमें न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था –

'निश्चय ही यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि इससे पहले कि न्यायालय अभियुक्त को दोषसिद्ध कर सके, अभियुक्त दोषी 'होना चाहिए' न कि केवल 'दोषी हो सकता है' और 'हो सकता है' तथा 'होना चाहिए' के बीच मानसिक अंतर बहुत लंबा है और अस्पष्ट अटकलों को निश्चित निष्कर्षों से अलग करता है ।'

(2) इस प्रकार सिद्ध किए गए तथ्य केवल अभियुक्त की दोषिता की कल्पना के अनुरूप होने चाहिएं अर्थात् इस बात के सिवाए कि अभियुक्त दोषी है, किसी अन्य कल्पना के पोषक नहीं होने चाहिएं ;

(3) परिस्थितियां निश्चायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिएं ;

(4) उन्हें साबित की जाने वाली हर उप-कल्पना के

सिवाए हर संभावित उप-कल्पना अपवर्जित करनी चाहिए ; और

(5) साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषिता के अनुरूप निष्कर्ष निकालने के लिए कोई भी युक्तियुक्त आधार न बचे और उससे यह दर्शित हो कि संपूर्ण मानवीय अधिसंभाव्य में वह कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा ।"

8. यह भी दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आरोप को साबित करने के प्रयोजनार्थ अभियोजन पक्ष को "मानववध मृत्यु" को एक प्राथमिक तथ्य के रूप में अवश्य सिद्ध करना चाहिए । किसी अभियुक्त को धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करने के लिए न्यायालय को सर्वप्रथम देखना चाहिए कि क्या अभियोजन पक्ष ने मानववध मृत्यु के तथ्य को साबित किया है । जहां तक प्रस्तुत मामले के तथ्यों का संबंध है, अभि. सा. 13 डा. आर. के. सिंह, जिसने मृतकों बृंदा और कन्हैया की मरणोत्तर परीक्षा की थी, का साक्ष्य इस संबंध में सर्वाधिक सुसंगत होगा । उसने न्यायालय के समक्ष अपने अभिसाक्ष्य में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह कथन किया था कि उसने तारीख 12 दिसंबर, 1994 को कुमारी बृंदा पुत्री भागीरथी और कन्हैया **उर्फ** चंद्रशेखर गौर की मरणोत्तर परीक्षा की थी । दोनों मृतकों के शव सड़ी हालत में थे । उसने यह भी कथन किया था कि मृतका बृंदा की गर्दन पर मौजूद गांठ बांधने का चिह्न मृत्यु-पूर्व का था और मृत्यु का कारण फांसी लगाने के कारण श्वसावरोध होना प्रतीत होता था । मृत्यु 8 से 10 दिन के भीतर हुई थी और मृत्यु आत्महत्या की प्रकृति की थी । उक्त डाक्टर ने कन्हैया के लिए भी इसी प्रकार के तथ्यों का कथन किया था कि कन्हैया का शव उसकी गर्दन से बाईं तरफ मुड़ा हुआ पाया था और गर्दन पर 10 इंच x 5 इंच आकार का एक बांधने का चिह्न था । मृत्यु का कारण फांसी लगाने के कारण श्वासोवरुद्ध होना प्रतीत होता था और मृत्यु 8 से 10 दिन के भीतर हुई प्रतीत होती थी । उसने यह भी कथन किया था कि मृतकों के शवों पर न तो अस्थिभंग पाया

गया था, न ही कोई रक्त के थक्के पाए गए थे, न ही कोई क्षतियां पाई गई थीं और इसलिए उसने यह राय व्यक्त की थी कि मृत्यु का कारण फांसी लगाना था, जो कि प्रसामान्यत: आत्महत्या के मामले में पाया जाता है । उसने विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया था कि चूंकि शव सड़ गए थे इसलिए वह इस बारे में कोई राय व्यक्त नहीं कर सका था कि क्या यह एक मानववध मृत्यु थी । अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा की गई प्रतिपरीक्षा में उसने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया था कि उसे मानववध मृत्यु का कोई लक्षण नहीं पाया था, न ही उसने तारीख 12 दिसंबर, 1994 को दी गई अपनी रिपोर्ट में यह राय व्यक्त की थी कि मृतकों की मौतें मानववध थीं । निस्संदेह, उसने यह कथन किया था कि तारीख 30 अप्रैल, 1995 को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मृत्यु मानववध मृत्यु हो सकती हैं ।

9. यह उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि की पुष्टि करने से पूर्व आक्षेपित निर्णय में डा. आर. के. सिंह के साक्ष्य पर इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कतई विचार नहीं किया था कि क्या मृत्यु मानववध मृत्यु थीं । दुर्भाग्यवश, सेशन न्यायालय ने भी अपने निर्णय के पैरा 23 में यह मत व्यक्त किया था कि डा. आर. के. सिंह का कथन महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि उसने एक राय व्यक्त की थी जो न तो अभियोजन पक्ष के लिए फायदेप्रद है और न ही प्रतिरक्षा पक्ष के लिए । हमारी राय में, जब अभियोजन का पक्षकथन पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित था, तो अभियोजन पक्ष के लिए यह आवश्यक था कि वह युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित करे कि मृतकों की मृत्यु मानववध मृत्यु थीं न कि आत्महत्या, विशिष्ट रूप से जब अभियुक्त द्वारा ली गई प्रतिरक्षा यह थी कि बृंदा और कन्हैया ने आत्महत्या की थी और जब डा. आर. के. सिंह, जिसने उनकी मरणोत्तर परीक्षाएं की थीं, ने भी यह राय व्यक्त की थी कि उनकी मृत्यु आत्महत्या की प्रकृति की हैं ।

10. यह बात इस न्यायालय को अभियोजन पक्ष द्वारा अवलंब

लिए गए अपराध में फंसाने वाले साक्ष्य अर्थात् सह-अभियुक्त विदेशी द्वारा की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति की परीक्षा करने की ओर ले जाती है । अभियोजन पक्ष के अनुसार, अभियुक्त विदेशी ने अभि. सा. 4 भोला सिंह के समक्ष आत्म-अभिशंसी संस्वीकृति की थी और वर्तमान अपीलार्थी सहित अन्य अभियुक्तों को अंतर्ग्रस्त करते हुए अभि. सा. 5 चंद्रशेखर, अभि. सा. 6 बरन सिंह और अभि. सा. 7 डुकलुराम के समक्ष भी संस्वीकृति की थी । अभियोजन पक्ष ने विदेशी का एक शपथपत्र (प्रदर्श पी/11) भी प्रस्तुत किया था, जिसे अभिकथित रूप से नोटरी के समक्ष प्रतिज्ञात किया गया था । यद्यपि विचारण न्यायालय ने विदेशी के न्यायिकेतर संस्वीकृति के उक्त साक्ष्य का अवलंब लेने के उपरांत सभी चारों अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया था, तो भी उच्च न्यायालय ने उक्त न्यायिकेतर संस्वीकृति पर भागत: विश्वास करते हुए तीन अभियुक्तों अर्थात् भागीरथी, मंगल सिंह और विदेशी को उनके विरुद्ध लगाए गए भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया था, तथापि, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 201 के अधीन अपराध के लिए यह अभिनिर्धारित करते हुए दोषसिद्ध किया था कि उक्त अभियुक्तों ने साक्ष्य छिपाने की कोशिश की थी ।

11. इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जा सकता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 30 के अनुसार जब एक से अधिक व्यक्तियों का एक ही अपराध के लिए संयुक्त रूप से विचारण किया जा रहा हो और ऐसे व्यक्तियों में से किसी एक के द्वारा अपने को और ऐसे व्यक्तियों में से किसी अन्य को प्रभावित करने वाली की गई संस्वीकृति को साबित किया जाता है, तब न्यायालय ऐसी संस्वीकृति को ऐसे अन्य व्यक्ति के विरुद्ध तथा ऐसी संस्वीकृति करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध विचार में ले सकेगा । तथापि, इस न्यायालय ने सतत् रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति कमजोर प्रकार का साक्ष्य है और जब तक इससे विश्वास प्रेरित न होता हो या विश्वसनीय प्रकृति के किसी अन्य साक्ष्य द्वारा पूरी तरह संपुष्टि न होती हो, तो सामान्यतया हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्धि केवल न्यायिकेतर संस्वीकृति के साक्ष्य के

आधार पर नहीं की जानी चाहिए । जैसा कि **मध्य प्रदेश राज्य** मार्फत **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो और अन्य** बनाम **पल्टन मल्लाह और अन्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, सह-अभियुक्त द्वारा की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति को साक्ष्य में केवल एक संपुष्टिकारी साक्ष्य के रूप में ग्रहण किया जा सकता है । अभियुक्त के विरुद्ध किसी सारभूत साक्ष्य के अभाव में, सह-अभियुक्त द्वारा की गई अभिकथित रूप से न्यायिकेतर संस्वीकृति महत्वहीन हो जाती है और सह-अभियुक्त की ऐसी न्यायिकेतर संस्वीकृति के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है ।

12. **सहदेवन और एक अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[2] वाले मामले में पैरा 14 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था :–

> "14. दांडिक विधिशास्त्र का यह एक स्थिर सिद्धांत है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति एक कमजोर साक्ष्य है । जहां कहीं न्यायालय संपूर्ण अभियोजन साक्ष्य का सम्यक् मूल्यांकन करने के उपरांत न्यायिकेतर संस्वीकृति के आधार पर कोई दोषसिद्धि करना चाहता है, तो उसे अवश्य यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उससे विश्वास प्रेरित होता हो और अन्य अभियोजन साक्ष्य द्वारा संपुष्टि होती हो । यदि, तथापि, न्यायिकेतर संस्वीकृति तात्विक विसंगतियों या अंतर्निहित अनधिसंभाव्यताओं से ग्रसित हो और अभियोजन के वृत्तांत के अनुसार यह तर्कपूर्ण प्रतीत न होती हो, तो ऐसी किसी संस्वीकृति पर दोषसिद्धि को आधारित करना न्यायालय के लिए कठिन हो सकता है । ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय ऐसे साक्ष्य को विचार में न लेने के लिए पूर्णतया न्यायोचित होगा ।"

जगरूप सिंह बनाम **पंजाब राज्य**[3], **एस. के. युसुफ** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[4] और **पंचो** बनाम **हरियाणा राज्य**[5] वाले मामलों में भी इस

---

[1] (2005) 3 एस. सी. सी. 169.

[2] (2012) 6 एस. सी. सी. 403.

[3] (2012) 11 एस. सी. सी. 768.

[4] (2011) 11 एस. सी. सी. 754.

[5] (2011) 10 एस. सी. सी. 165.

न्यायालय द्वारा उक्त विनिश्चयाधार को दोहराया और अनुसरण किया गया था, जिनमें विनिर्दिष्ट रूप से यह अधिकथित किया गया है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति स्वत: एक कमजोर साक्ष्य है और न्यायालय द्वारा इसकी अत्यधिक सावधानी और सतर्कता से परीक्षा की जानी चाहिए । यह सत्य होनी चाहिए और विश्वासोत्पादक होनी चाहिए । कोई न्यायिकेतर संस्वीकृति वहां और अधिक विश्वसनीयता और साक्ष्यिक महत्व प्राप्त कर लेती है यदि तर्कपूर्ण परिस्थितियों द्वारा इसका समर्थन होता है और अन्य साक्ष्य द्वारा भी संपुष्टि होती है । प्रस्तुत मामले में, यह सही है कि सह-अभियुक्त विदेशी ने अभि. सा. 4 भोला सिंह के समक्ष अभिकथित रूप से आत्म-अभिशंसी न्यायिकेतर संस्वीकृति की थी और अन्य साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 5 चंद्रशेखर, अभि. सा. 6 बरन सिंह ठाकुर और अभि. सा. 7 डुकलुराम के समक्ष, अन्य बातों के साथ-साथ, यह न्यायिकेतर संस्वीकृति की थी कि अन्य तीन अभियुक्तों अर्थात् भागीरथी, चंद्रपाल और मंगल सिंह ने हत्या कारित की थी और उसे (विदेशी) शवों को ठिकाने लगाने में और साक्ष्य छिपाने में उनकी सहायता करने के लिए कहा था । तथापि, उच्च न्यायालय ने सह-अभियुक्त विदेशी द्वारा की गई उक्त दो न्यायिकेतर संस्वीकृति के बीच असंगति होने की बात पर विचार करते हुए अन्य अभियुक्तों अर्थात् भागीरथी, मंगल सिंह और स्वयं विदेशी को दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं समझा और उच्च न्यायालय ने आश्चर्यजनक रूप से विदेशी द्वारा की गई उक्त न्यायिकेतर संस्वीकृति को अपीलार्थी चंद्रपाल के विरुद्ध आरोपित अपराधों के लिए उसे दोषसिद्ध करने हेतु उसके विरुद्ध एक अपराध में फंसाने वाली परिस्थिति समझा । हमारी राय में, यदि सह-अभियुक्त विदेशी का ऐसा कमजोर साक्ष्य अन्य सह-अभियुक्तों को मृतक बृंदा और कन्हैया की हत्या कारित करने का दोषी ठहराने के लिए सम्यक् रूप से साबित नहीं हुआ था या विश्वसनीय नहीं पाया गया था, तो उच्च न्यायालय उक्त साक्ष्य का प्रयोग वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध उसे अभिकथित अपराध के लिए दोषी ठहराने के प्रयोजन के लिए नहीं

कर सकता था ।

13. यह बात इस न्यायालय को अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई "एकसाथ देखे जाने" की कहानी की परीक्षा करने की ओर अग्रसर करती है । अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, अभि. सा. 1 धनसिंह ने दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को अभियुक्त चंद्रपाल को मृतक कन्हैया को बुलाते हुए और उसे अपने मकान के अंदर ले जाते हुए देखा था । इस तथ्य के अतिरिक्त कि उक्त धनसिंह ने उस समय और तारीख के बारे में उल्लेख नहीं किया था, जब उसने कन्हैया को अंतिम बार चंद्रपाल के साथ देखा था, यदि यह मान भी लिया जाए कि जब चंद्रपाल ग्राम पंचायत के परिसर में बैठा हुआ था, तब उसने चंद्रपाल को कन्हैया को बुलाते हुए देखा था, तो भी उक्त घटना उस दिन से दस दिन पूर्व घटी थी, जब मृतकों के शव पाए गए थे । दो घटनाओं अर्थात् उस दिन जब धनसिंह ने चंद्रपाल को कन्हैया को अपने मकान पर बुलाते हुए देखा था और उस दिन जब कन्हैया का शव पाया गया था, के बीच समय अंतराल काफी लंबा होने के कारण वर्तमान अपीलार्थी को अभिकथित अपराध से संपृक्त करना कठिन है, विशिष्ट रूप से जब अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया कोई अन्य विश्वसनीय और तर्कपूर्ण साक्ष्य नहीं है ।

14. इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा "अंतिम बार एकसाथ देखे जाने" के सिद्धांत के विषय में अधिकथित की गई विधि को भी दोहराना सुसंगत होगा ।

15. **बोधराज और अन्य** बनाम **जम्मू और कश्मीर राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने पैरा 31 में यह अभिनिर्धारित किया था कि :–

> "31. अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत वहां लागू होता है, जहां उस सुसंगत समय जब अभियुक्त और मृतक अंतिम बार एकसाथ जीवित देखे गए थे और जब मृतक मृत पाया गया है, के बीच समय अंतराल इतना कम है कि अभियुक्त के सिवाए किसी

[1] (2002) 8 एस. सी. सी. 45.

अन्य व्यक्ति की अपराध का कर्ता होने की संभाव्यता असंभव हो जाती है .....।"

16. **जसवंत गिर** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला में किन्हीं अन्य कड़ियों के अभाव में, अभियुक्त को एकमात्र रूप से "अंतिम बार एकसाथ देखे जाने" के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है, भले ही अभियोजन साक्षी का वृत्तांत इस संबंध में विश्वसनीय हो ।

17. **अर्जुन मारिक और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि अंतिम बार देखे जाने की एकमात्र परिस्थिति से यह निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं होगी कि यह केवल अभियुक्त की दोषिता की परिकल्पना के साथ संगत है और इसलिए कोई दोषसिद्धि केवल इस आधार पर आधारित नहीं की जा सकती है ।

18. जैसा कि इसमें ऊपर उल्लेख किया गया है, अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किए जाने वाला सर्वप्रथम पहलू मानववध मृत्यु के तथ्य का है । यदि अभियोजन पक्ष का साक्ष्य मृतक की मानववध मृत्यु के सबूत के लिए कम पड़ता है और यदि आत्महत्या से मृत्यु की संभाव्यता को नकारा न जा सकता हो, तो इस न्यायालय की राय में, अपीलार्थी-अभियुक्त को मात्र "अंतिम बार एकसाथ देखे जाने" की कहानी के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता था ।

19. अत: अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की यह राय है कि उच्च न्यायालय ने सह-अभियुक्त विदेशी द्वारा अभिकथित रूप से की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति के एक बहुत ही कमजोर प्रकार के साक्ष्य का अवलंब लेते हुए और अभि. सा. 1

---

[1] (2005) 12 एस. सी. सी. 438.

[2] (1994) 2 सप्ली. एस. सी. सी. 372.

धनसिंह द्वारा प्रस्तुत की गई "अंतिम बार एकसाथ देखे जाने" की कहानी का अवलंब लेते हुए अपीलार्थी-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अभिकथित अपराध के लिए दोषसिद्ध करके गंभीर गलती की थी । यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है कि कैसे और किसके द्वारा मृतका बृंदा की अभिकथित रूप से हत्या की गई थी । इन परिस्थितियों में, यह अभिनिर्धारित किया जाना आवश्यक है कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में पूरी तरह से असफल रहा था । संदेह चाहे कितना भी मजबूत हो, सबूत का स्थान नहीं ले सकता है ।

20. ऊपर उल्लिखित कारणों से, यह अपील मंजूर किए जाने योग्य है और तद्नुसार मंजूर की जाती है । अपीलार्थी-अभियुक्त चंद्रपाल को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है । उसे तुरंत रिहा किए जाने का निदेश दिया जाता है ।

21. कार्यालय को आवश्यक कार्यवाही करने और संबंधित जेल प्राधिकारी को शीघ्रतापूर्वक इस आदेश की प्रति भेजने का निदेश दिया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

संसद के अधिनियम

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971

(1971 का अधिनियम संख्यांक 70)

[24 दिसम्बर, 1971]

न्यायालयों के अवमान के लिए दंडित करने के बारे में कुछ न्यायालयों की शक्तियों को परिनिश्चित और परिसीमित करने के लिए और उस सम्बन्ध में उनकी प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के बाईसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में अधिनियमित हो :–

1. संक्षिप्त नाम और विस्तार – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 है ।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है :

परन्तु यह जम्मू-कश्मीर राज्य को वहां तक के सिवाय लागू नहीं होगा जहां तक इस अधिनियम के उपबंधों का सम्बन्ध उच्चतम न्यायालय के अवमान से है ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "न्यायालय अवमान" से सिविल अवमान अथवा आपराधिक अवमान अभिप्रेत है ;

(ख) "सिविल अवमान" से किसी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री, निदेश, आदेश, रिट या अन्य आदेशिका की जानबूझकर अवज्ञा करना अथवा न्यायालय से किए गए किसी वचनबन्ध को जानबूझकर भंग करना, अभिप्रेत है ;

(ग) "आपराधिक अवमान" से किसी भी ऐसी बात का (चाहे

बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा, या संकेतों द्वारा, या दृश्य रूपणों द्वारा, या अन्यथा) प्रकाशन अथवा किसी भी अन्य ऐसे कार्य का करना अभिप्रेत है –

(i) जो किसी न्यायालय को कलंकित करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे कलंकित करने की है अथवा जो उसके प्राधिकार को अवनत करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे अवनत करने की है ; अथवा

(ii) जो किसी न्यायिक कार्यवाही के सम्यक् अनुक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, या उसमें हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है ; अथवा

(iii) जो न्याय प्रशासन में किसी अन्य रीति से हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें बाधा डालने की है ;

(घ) "उच्च न्यायालय" से किसी राज्य अथवा संघ राज्यक्षेत्र के लिए उच्च न्यायालय अभिप्रेत है और किसी संघ राज्यक्षेत्र में न्यायिक आयुक्त का न्यायालय इसके अन्तर्गत है ।

3. किसी बात के निर्दोष प्रकाशन और वितरण का अवमान न होना – (1) कोई व्यक्ति इस आधार पर कि उसने किसी ऐसी बात को (चाहे बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्य रूपणों द्वारा या अन्यथा) प्रकाशित किया है जो प्रकाशन के समय लम्बित किसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही के सम्बन्ध में न्याय के अनुक्रम में हस्तक्षेप करती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें बाधा डालने की है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें उस समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि वह कार्यवाही लम्बित थी ।

(2) इस अधिनियम में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, किसी ऐसी सिविल या दाण्डिक

कार्यवाही के संबंध में, जो प्रकाशन के समय लम्बित नहीं है, किसी ऐसी बात के प्रकाशन के बारे में, जो उपधारा (1) में वर्णित है, यह नहीं समझा जाएगा कि उससे न्यायालय अवमान होता है ।

(3) कोई भी व्यक्ति इस आधार पर कि उसने ऐसा कोई प्रकाशन वितरित किया है जिसमें कोई ऐसी बात अन्तर्विष्ट है जो उपधारा (1) में वर्णित है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें वितरण के समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि उसमें यथापूर्वोक्त कोई बात अन्तर्विष्ट थी या उसके अन्तर्विष्ट होने की सम्भावना थी :

परन्तु यह उपधारा निम्नलिखित के विवरण के बारे में लागू न होगी –

(i) कोई ऐसा प्रकाशन जो प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1867 (1867 का 25) की धारा 3 में अन्तर्विष्ट नियमों के अनुरूप मुद्रित या प्रकाशित न होते हुए अन्यथा मुद्रित या प्रकाशित पुस्तक या कागजपत्र है ;

(ii) कोई ऐसा प्रकाशन जो उक्त अधिनियम की धारा 5 में अन्तर्विष्ट नियमों के अनुरूप प्रकाशित न होते हुए अन्यथा प्रकाशित समाचारपत्र है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए कोई न्यायिक कार्यवाही –

(क) निम्नलिखित दशाओं में लम्बित कही जाती है –

(क) सिविल कार्यवाही के मामले में जब वह वादपत्र फाइल करके या अन्यथा संस्थित की जाती है,

(ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) या किसी अन्य विधि के अधीन किसी दाण्डिक कार्यवाही के मामले में –

(i) जहां वह किसी अपराध के किए जाने से संबंधित है वहां जब आरोप-पत्र या चालान फाइल किया जाता है अथवा

जब अपराधी के विरुद्ध न्यायालय, यथास्थिति, समन या वारंट निकालता है, और

(ii) किसी अन्य मामले में जब न्यायालय उस विषय का संज्ञान करता है जिससे कार्यवाही संबंधित है ; और

किसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही के मामले में तब तक लम्बित बनी रही समझी जाएगी जब तक वह सुन नहीं ली जाती और अन्तिम रूप से विनिश्चित नहीं कर दी जाती, अर्थात् उस मामले में जहां अपील या पुनरीक्षण हो सकता है, जब तक अपील या पुनरीक्षण को सुन नहीं लिया जाता और अन्तिम रूप से विनिश्चित नहीं कर दिया जाता, या जहां अपील या पुनरीक्षण न किया जाए वहां जब तक उस परिसीमा-काल का अवसान नहीं हो जाता जो ऐसी अपील या पुनरीक्षण के लिए विहित है ;

(ख) जिसे सुन लिया गया है और अन्तिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है, केवल इस बात के ही कारण लम्बित नहीं समझी जाएगी कि उसमें पारित डिक्री, आदेश या दण्डादेश के निष्पादन की कार्यवाही लम्बित है ।

4. न्यायिक कार्यवाही की उचित और सही रिपोर्ट का अवमान न होना – धारा 7 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई भी व्यक्ति किसी न्यायिक कार्यवाही या उसके किसी प्रक्रम की उचित और सही रिपोर्ट प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

5. न्यायिक कार्य की उचित आलोचना का अवमान न होना – कोई भी व्यक्ति किसी मामले के, जिसे सुन लिया गया है और अन्तिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है, गुणागुण पर उचित टीका-टिप्पणी प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

6. अधीनस्थ न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों के विरुद्ध परिवाद का कब अवमान न होना – कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे कथन के बारे में जो उसने किसी अधीनस्थ न्यायालय के पीठासीन अधिकारी की बाबत –

(क) किसी अन्य अधीनस्थ न्यायालय से, या

(ख) उच्च न्यायालय से,

जिसके अधीनस्थ वह न्यायालय है, सद्भावपूर्वक किया हो, न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "अधीनस्थ न्यायालय" से किसी उच्च न्यायालय के अधीनस्थ कोई न्यायालय अभिप्रेत है ।

7. चैम्बर में या बन्द कमरे में कार्यवाहियों के संबंध में जानकारी के प्रकाशन का कुछ दशाओं के सिवाय अवमान न होना – (1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, कोई व्यक्ति चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठे हुए न्यायालय के समक्ष किसी न्यायिक कार्यवाही की उचित और सही रिपोर्ट प्रकाशित करने से, निम्नलिखित दशाओं के सिवाय, न्यायालय अवमान का दोषी न होगा, अर्थात् –

(क) जब प्रकाशन तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के उपबन्धों के प्रतिकूल है ;

(ख) जब न्यायालय, लोक-नीति के आधारों पर या अपने में निहित किसी शक्ति का प्रयोग करते हुए उस कार्यवाही से सम्बद्ध सभी जानकारी का या उस वर्णन की जानकारी का, जो प्रकाशित की जाती है, प्रकाशन स्पष्टत: प्रतिषिद्ध कर देता है ;

(ग) जब न्यायालय लोक व्यवस्था अथवा राज्य की सुरक्षा से सम्बन्धित कारणों से चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठता है तब उस कार्यवाही से सम्बद्ध जानकारी का प्रकाशन ;

(घ) जब जानकारी किसी ऐसी गुप्त प्रक्रिया, खोज या आविष्कार के सम्बन्ध में है जो कार्यवाही में विवाद्यक है ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कोई भी व्यक्ति चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठे हुए न्यायालय द्वारा दिए गए सम्पूर्ण आदेश या उसके किसी भाग का मूल पाठ या उचित और सही सारांश प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा जब तक कि न्यायालय ने लोक-नीति के आधारों पर, या लोक

व्यवस्था अथवा राज्य की सुरक्षा से संबद्ध कारणों से, या इस आधार पर कि उसमें गुप्त प्रक्रिया, खोज या आविष्कार से संबंधित जानकारी अन्तर्विष्ट है, या अपने में निहित किसी शक्ति का प्रयोग करते हुए, उसका प्रकाशन स्पष्टतः प्रतिषिद्ध नहीं कर दिया है ।

8. अन्य प्रतिवादों पर कोई प्रभाव न होना – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी भी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि उसमें यह विवक्षित है कि कोई अन्य ऐसा प्रतिवाद जो न्यायालय अवमान की किन्हीं कार्यवाहियों में विधिमान्य प्रतिवाद होता, केवल इस अधिनियम के उपबन्धों के कारण ही उपलभ्य नहीं रहा है ।

9. अधिनियम द्वारा, अवमान की परिधि का बढ़ाना, विवक्षित न होना – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी भी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि उसमें यह विवक्षित है कि कोई ऐसी अवज्ञा या ऐसा भंग, प्रकाशन या अन्य कार्य जो इस अधिनियम से अन्यथा न्यायालय अवमान के रूप में दण्डनीय न होता ऐसे दण्डनीय है ।

10. अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के लिए दण्डित करने की उच्च न्यायालय की शक्ति – प्रत्येक उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के बारे में वही अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार प्राप्त होंगे और वह उसी प्रक्रिया और पद्धति के अनुसार उनका प्रयोग करेगा जैसे उसे स्वयं अपने अवमान के बारे में प्राप्त हैं और जिसके अनुसार वह उनका प्रयोग करता है :

परन्तु कोई भी उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालय के बारे में किए गए अभिकथित अवमान का संज्ञान नहीं करेगा जबकि वह अवमान भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) के अधीन दण्डनीय अपराध है ।

11. अधिकारिता के बाहर किए गए अपराधों या पाए गए अपराधियों का विचारण करने की उच्च न्यायालय की शक्ति – उच्च न्यायालय को अपने या अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय के अवमान की जांच करने और उसका विचारण करने की अधिकारिता होगी चाहे ऐसे

अवमान का उसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर किया जाना अभिकथित हो या बाहर और चाहे वह व्यक्ति जो अवमान का दोषी अभिकथित है ऐसी सीमाओं के भीतर हो या बाहर ।

12. न्यायालय अवमान के लिए दण्ड – (1) इस अधिनियम या किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय न्यायालय अवमान सादे कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो दो हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से दण्डित किया जा सकेगा :

परन्तु न्यायालय को समाधानप्रद रूप से माफी मांगे जाने पर अभियुक्त को उन्मोचित किया जा सकेगा या अधिनिर्णीत दण्ड का परिहार किया जा सकेगा ।

स्पष्टीकरण – कोई भी माफी, जो अभियुक्त ने सद्भावपूर्वक मांगी है, केवल इस आधार पर नामंजूर नहीं की जाएगी कि वह सापेक्ष अथवा सशर्त है ।

(2) तत्समय प्रवृत किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी कोई न्यायालय चाहे अपने या अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय के अवमान के बारे में उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट दण्ड से अधिक दण्ड अधिरोपित नहीं करेगा ।

(3) इस धारा में किसी बात के होते हुए भी, जब कोई व्यक्ति सिविल अवमान का दोषी पाया जाता है तब यदि न्यायालय यह समझता है कि जुर्माने से न्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा और कारावास का दण्ड आवश्यक है, तो वह उसे सादे कारावास से दण्डादिष्ट करने के बजाय यह निर्देश देगा कि वह छह मास से अनधिक की इतनी अवधि के लिए, जितनी न्यायालय ठीक समझे, सिविल कारागार में निरुद्ध रखा जाए ।

(4) जहां न्यायालय से किए गए वचनबंध के बारे में न्यायालय अवमान का दोषी पाया गया व्यक्ति, कोई कम्पनी है, वहां प्रत्येक व्यक्ति जो अवमान के किए जाने के समय कम्पनी के कारबार के संचालन के लिए कम्पनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था, और साथ ही वह कम्पनी भी, अवमान के दोषी समझे जाएंगे और

न्यायालय की इजाजत से, दण्ड का प्रवर्तन, प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को सिविल कारागार में निरुद्ध करके किया जा सकेगा :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दण्ड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह साबित कर देता है कि अवमान उसकी जानकारी के बिना किया गया था अथवा उसने उसका किया जाना निवारित करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(5) उपधारा (4) में किसी बात के होते हुए भी, जहां उसमें निर्दिष्ट न्यायालय अवमान किसी कम्पनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अवमान कम्पनी के किसी निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी की सम्मति अथवा मौनानुकूलता से किया गया है या उसकी किसी उपेक्षा के कारण हुआ माना जा सकता है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अवमान का दोषी समझा जाएगा और न्यायालय की इजाजत से, दण्ड का प्रवर्तन, उस निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी को सिविल कारागार में निरुद्ध करके किया जा सकेगा ।

स्पष्टीकरण – उपधारा (4) और (5) के प्रयोजन के लिए, –

(क) "कम्पनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और उसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम भी है ; और

(ख) किसी फर्म के सम्बन्ध में, "निदेशक" से, उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

[1][**13. कतिपय मामलों में अवमानों का दंडनीय न होना** – तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, –

(क) कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन न्यायालय अवमान के लिए दंड तब तक अधिरोपित नहीं करेगा जब तक उसका यह समाधान नहीं हो जाता है कि अवमान ऐसी प्रकृति का है कि वह न्याय के सम्यक् अनुक्रम में पर्याप्त हस्तक्षेप करता है, या उसकी प्रवृत्ति पर्याप्त हस्तक्षेप करने की है ;

[1] 2006 के अधिनियम सं. 6 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(ख) न्यायालय, न्यायालय अवमान के लिए किसी कार्यवाही में, किसी विधिमान्य प्रतिरक्षा के रूप में सत्य द्वारा न्यायानुमत की अनुज्ञा दे सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि वह लोकहित में है और उक्त प्रतिरक्षा का आश्रय लेने के लिए अनुरोध सद्भाविक है ।]

14. जहां अवमान उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सन्मुख है वहां प्रक्रिया – (1) जब यह अभिकथित किया जाता है या उच्चतम या उच्च न्यायालय को अपने अवलोकन पर यह प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति उसकी उपस्थिति में या उसके सुनते हुए किए गए अवमान का दोषी है तब वह न्यायालय ऐसे व्यक्ति को अभिरक्षा में निरुद्ध करा सकेगा और न्यायालय के उठने से पूर्व उसी दिन किसी भी समय या उसके पश्चात् यथासम्भवशीघ्र –

(क) उसे उस अवमान की लिखित जानकारी कराएगा जिसका उस पर आरोप है ;

(ख) उसे आरोप का प्रतिवाद करने का अवसर देगा ;

(ग) ऐसा साक्ष्य लेने के पश्चात् जो आवश्यक हो या जो ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया जाए और उस व्यक्ति को सुनने के पश्चात्, चाहे तत्काल या स्थगन के पश्चात्, आरोप के मामले का अवधारण करने के लिए अग्रसर होगा ; और

(घ) ऐसे व्यक्ति को दण्डित करने या उन्मोचित करने का ऐसा आदेश करेगा जो न्यायसंगत हो ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां कोई व्यक्ति जिस पर उस उपधारा के अधीन अवमान का आरोप लगाया गया है, चाहे मौखिक रूप से या लिखित रूप से, आवेदन करता है कि उसके विरुद्ध आरोप का विचारण उस न्यायाधीश या उन न्यायाधीशों से, जिसकी या जिनकी उपस्थिति में या जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, भिन्न किसी न्यायाधीश द्वारा किया जाए और न्यायालय की राय है कि ऐसा करना साध्य है और आवेदन को उचित न्याय प्रशासन के हित में मंजूर किया जाना चाहिए तो वह उस मामले

को, मामले के तथ्यों के कथन सहित मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष ऐसे निदेशों के लिए रखवाएगा जिन्हें वह उसके विचारण की बाबत जारी करना ठीक समझे ।

(3) किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उस व्यक्ति के, जिस पर उपधारा (1) के अधीन अवमान का आरोप है, उस विचारण में जो उपधारा (2) के अधीन दिए गए निदेश के अनुसरण में उस न्यायाधीश या उन न्यायाधीशों से, जिसकी या जिनकी उपस्थिति में या जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, भिन्न किसी न्यायाधीश द्वारा किया जाता है, यह आवश्यक न होगा कि वह न्यायाधीश या वे न्यायाधीश जिसकी या जिनकी उपस्थिति में या जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, साक्षी के रूप में उपस्थित हो या उपस्थित हों और उपधारा (2) के अधीन मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा गया कथन मामले में साक्ष्य माना जाएगा ।

(4) न्यायालय निदेश दे सकेगा कि वह व्यक्ति जिस पर इस धारा के अधीन अवमान का आरोप है आरोप का अवधारण होने तक ऐसी अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा जैसी वह न्यायालय विनिर्दिष्ट करे :

परन्तु यदि प्रतिभुओं सहित या रहित बन्धपत्र निष्पादित कर दिया जाता है जो उतनी रकम का है जितनी न्यायालय पर्याप्त समझता है और जिसमें यह शर्त है कि वह व्यक्ति जिस पर आरोप है, बन्धपत्र में वर्णित समय और स्थान पर हाजिर होगा और जब तक न्यायालय द्वारा अन्यथा निदेश नहीं दे दिया जाता ऐसे हाजिर होता रहेगा तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा :

परन्तु यह और कि यदि न्यायालय ठीक समझता है तो ऐसे व्यक्ति से जमानत लेने के बजाय उसकी यथापूर्वोक्त हाजिरी के लिए प्रतिभुओं के बिना उसके द्वारा बन्धपत्र निष्पादित किए जाने पर उसे उन्मोचित कर सकेगा ।

15. अन्य दशाओं में आपराधिक अवमान का संज्ञान – (1) धारा 14 में निर्दिष्ट अवमान से भिन्न आपराधिक अवमान की दशा में, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय या तो स्वप्रेरणा से या –

(क) महाधिवक्ता के, अथवा

(ख) महाधिवक्ता की लिखित सम्मति से किसी अन्य व्यक्ति के, [1][अथवा]

[1][(ग) दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र के उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में, ऐसे विधि अधिकारी के, जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, या ऐसे विधि अधिकारी की लिखित सम्मति से किसी अन्य व्यक्ति के,] समावेदन पर कार्रवाई कर सकेगा ।

(2) किसी अधीनस्थ न्यायालय के आपराधिक अवमान की दशा में उच्च न्यायालय, उस अधीनस्थ न्यायालय द्वारा किए गए निर्देश पर या महाधिवक्ता द्वारा, या किसी संघ राज्यक्षेत्र के सम्बन्ध में, ऐसे विधि अधिकारी द्वारा, जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, किए गए समावेदन पर कार्रवाई कर सकेगा ।

(3) इस धारा के अधीन किए गए प्रत्येक समावेदन या निर्देश में वह अवमान विनिर्दिष्ट होगा जिसका कि वह व्यक्ति, जिस पर आरोप है, दोषी अभिकथित है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "महाधिवक्ता" पद से अभिप्रेत है –

(क) उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में, महान्यायवादी या महासालिसिटर ; तथा

(ख) उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में राज्य का या उन राज्यों में से किसी का जिनके लिए उच्च न्यायालय स्थापित किया गया है महाधिवक्ता ; तथा

(ग) न्यायिक आयुक्त के न्यायालय के सम्बन्ध में ऐसा विधि अधिकारी जिसे, केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 45 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

16. न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकतः कार्य करने वाले अन्य व्यक्ति द्वारा अवमान – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए कोई न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकत: कार्य करने वाला अन्य व्यक्ति भी अपने न्यायालय के या किसी अन्य न्यायालय के अवमान के लिए उसी रीति से दण्डनीय होगा जिससे कोई अन्य व्यक्ति होता है, और इस अधिनियम के उपबन्ध, यावत्शक्य तद्नुसार लागू होंगे ।

(2) इस धारा की कोई बात किसी न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकतः कार्य करने वाले अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी अधीनस्थ न्यायालय के आदेश या निर्णय के विरुद्ध उस न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या अन्य व्यक्ति के समक्ष लम्बित किसी अपील अथवा पुनरीक्षण में उस अधीनस्थ न्यायालय की बाबत की गई किन्हीं समुक्तियों या टिप्पणों को लागू नहीं होगी ।

17. संज्ञान के पश्चात् प्रक्रिया – (1) धारा 15 के अधीन प्रत्येक कार्यवाही की सूचना की तामील उस व्यक्ति पर, जिस पर आरोप है, वैयक्तिक रूप से की जाएगी जब तक कि न्यायालय, ऐसे कारणों से जो अभिलिखित किए जाएंगे, अन्यथा निदेश न दे ।

(2) सूचना के साथ निम्नलिखित होंगे –

(क) किसी समावेदन पर प्रारम्भ की गई कार्यवाही की दशा में, समावेदन की प्रतिलिपि तथा उन शपथपत्रों की भी प्रतिलिपियां, यदि कोई हों, जिन पर ऐसा समावेदन आधारित है ; तथा

(ख) किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा, किए गए निर्देश पर प्रारम्भ की गई कार्यवाही की दशा में, उस निर्देश की प्रतिलिपि ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि उस व्यक्ति के, जिस पर धारा 15 के अधीन आरोप हैं, सूचना की तामील से बचने के लिए फरार होने या छिपे जाने की सम्भावना है तो वह उसकी उतने मूल्य या रकम की संपत्ति की, जो वह न्यायालय युक्तियुक्त समझे, कुर्की का आदेश कर सकेगा ।

(4) उपधारा (3) के अधीन प्रत्येक कुर्की सिविल प्रक्रिया संहिता,

1908 (1908 का 5) में धन के संदाय की डिक्री के निष्पादन में सम्पत्ति की कुर्की के लिए उपबन्धित रीति से क्रियान्वित की जाएगी और यदि ऐसी कुर्की के पश्चात्, आरोपित व्यक्ति उपस्थित हो जाता है और न्यायालय को समाधानप्रद रूप से दर्शित कर देता है कि वह सूचना की तामील से बचने के लिए फरार नहीं हुआ था या छिपा नहीं था तो न्यायालय खर्चे के बारे में या अन्यथा ऐसे निबन्धनों पर, जैसे वह ठीक समझे, उसकी सम्पत्ति को कुर्की से निर्मोचित करने का आदेश देगा ।

(5) कोई व्यक्ति जिस पर धारा 15 के अधीन अवमान का आरोप है अपने प्रतिवाद के समर्थन में शपथपत्र फाइल कर सकेगा, और न्यायालय या तो फाइल किए गए शपथपत्रों पर या ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य लेने के पश्चात्, जैसा आवश्यक हो, आरोप के विषय को अवधारित कर सकेगा और ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जैसा मामले में न्याय के लिए अपेक्षित हो ।

18. आपराधिक अवमान के मामलों की सुनवाई न्यायपीठों द्वारा किया जाना – (1) धारा 15 के अधीन के आपराधिक अवमान के प्रत्येक मामले की सुनवाई और अवधारण कम से कम दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) न्यायिक आयुक्त के न्यायालय को लागू न होगी ।

19. अपीलें – (1) अवमान के लिए दण्डित करने की अपनी अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालय के किसी आदेश या विनिश्चय की साधिकार अपील –

(क) यदि आदेश या विनिश्चय एकल न्यायाधीश का है, तो न्यायालय के कम से कम दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ को होगी;

(ख) यदि आदेश या विनिश्चय न्यायपीठ का है, तो उच्चतम न्यायालय को होगी :

परन्तु यदि आदेश या विनिश्चय किसी संघ राज्यक्षेत्र के किसी न्यायिक आयुक्त के न्यायालय का है तो ऐसी अपील उच्चतम न्यायालय को होगी ।

(2) किसी अपील के लम्बित रहने पर, अपील न्यायालय आदेश दे सकेगा कि –

(क) उस दण्ड या आदेश का निष्पादन, जिसके विरुद्ध अपील की गई है, निलम्बित कर दिया जाए ;

(ख) यदि अपीलार्थी परिरोध में है तो वह जमानत पर छोड़ दिया जाए ; और

(ग) अपील की सुनवाई इस बात के होते हुए भी की जाए कि अपीलार्थी ने अपने अवमान का मार्जन नहीं किया है ।

(3) यदि किसी आदेश से, जिसके विरुद्ध अपील फाइल की जा सकती है, व्यथित कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय का समाधान कर देता है कि वह अपील करने का आशय रखता है तो उच्च न्यायालय उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त सभी शक्तियों का या उनमें से किन्हीं का प्रयोग भी कर सकेगा ।

(4) उपधारा (1) के अधीन अपील, उस आदेश की तारीख से जिसके विरुद्ध अपील की जाती है, –

(क) उच्च न्यायालय की किसी न्यायपीठ की अपील की दशा में, तीस दिन के भीतर की जाएगी ;

(ख) उच्चतम न्यायालय को अपील की दशा में, साठ दिन के भीतर की जाएगी ।

20. अवमान के लिए कार्यवाहियां करने की परिसीमा – कोई न्यायालय अवमान के लिए कार्यवाहियां, या तो स्वयं स्वप्रेरणा पर या अन्यथा, उस तारीख से, जिसको अवमान का किया जाना अभिकथित है, एक वर्ष की अवधि के अवसान के पश्चात् प्रारम्भ नहीं करेगा ।

21. अधिनियम का न्याय पंचायतों या अन्य ग्राम न्यायालयों को लागू न होना – इस अधिनियम की कोई भी बात न्याय प्रशासन के लिए किसी विधि के अधीन स्थापित न्याय पंचायतों या अन्य ग्राम न्यायालयों के, चाहे वे किसी भी नाम से ज्ञात हों, अवमान को लागू नहीं होगी ।

22. अधिनियम का अवमान से सम्बन्धित अन्य विधियों के अतिरिक्त होना, न कि उनका अल्पीकारक – इस अधिनियम के उपबन्ध, न्यायालयों के अवमान से सम्बन्धित किसी अन्य विधि के उपबन्धों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अल्पीकारक ।

23. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की नियम बनाने की शक्ति – यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या कोई उच्च न्यायालय किसी ऐसे विषय का उपबन्ध करने के लिए जो उसकी प्रक्रिया से सम्बन्धित हो, ऐसे नियम बना सकेगा जो इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत न हों ।

24. निरसन – न्यायालय अवमान अधिनियम, 1952 (1952 का 32) एतद्द्वारा निरसित किया जाता है ।

———————

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	290.00
4.	मानव अधिकार – डा. शिवदत्त शर्मा – 2006	340	120	60.00
5.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान (सिंधी भाषा में)	1998	कीमत रु. 45/-
4. बहुभाषी संविधान शब्दावली	1986	कीमत रु. 12/-
5. भारत का संविधान	2021	कीमत रु. 300/-

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/ product/ product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष **:** 011-23385259, 23387589, फैक्स **:** 011-23387589, ई-मेल **:** am.vsp-molj@gov.in